वर्ष–3, अंक–12
इंटरनेट संस्करण : 87

गर्भनाल पत्रिका

प्रवासी भारतीयों की मासिक पत्रिका

ISSN 2249–5967
फरवरी 2014

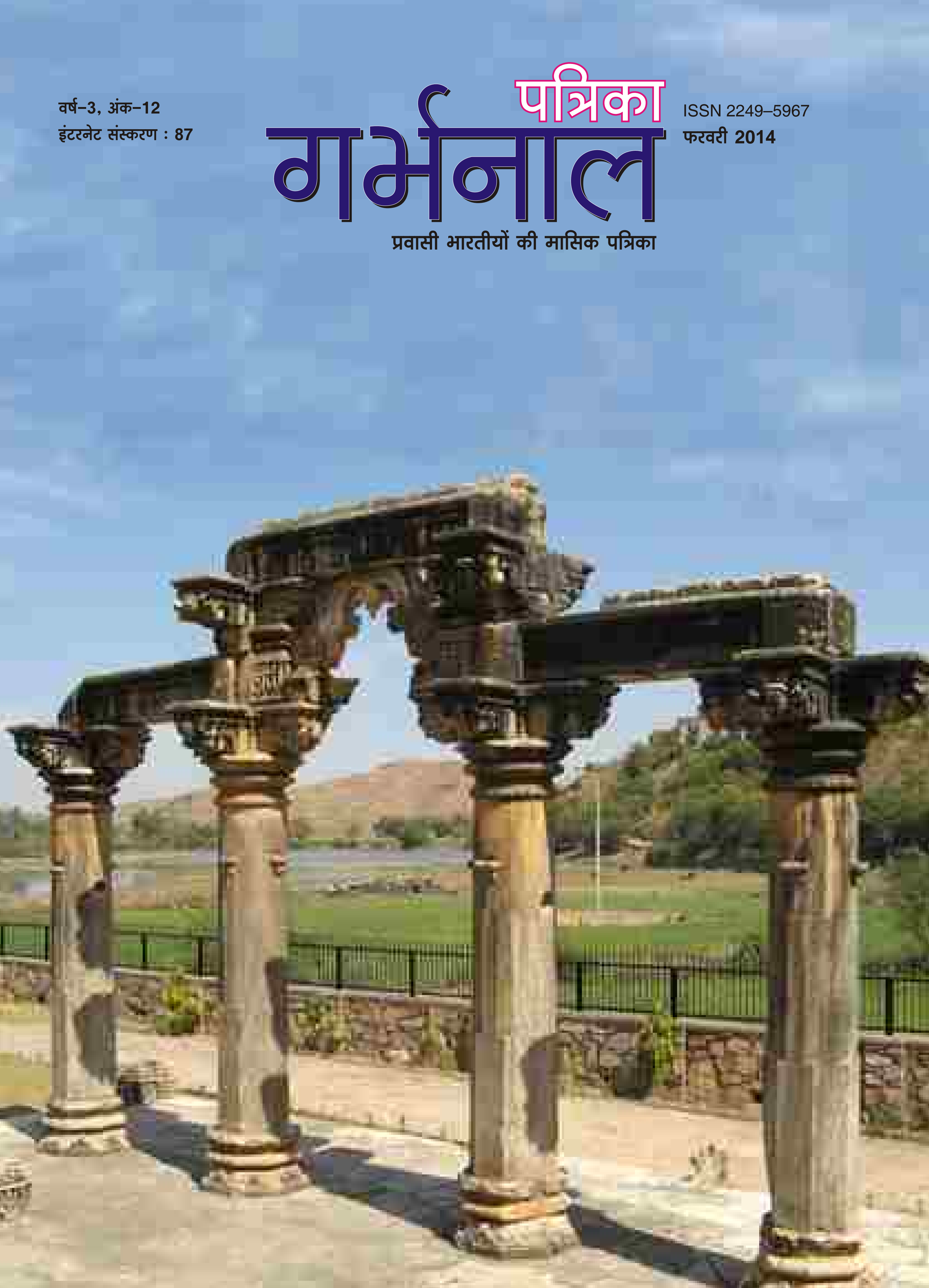

पत्रिका

गर्भनाल

वर्ष-3, अंक-12 (इंटरनेट संस्करण : 86)

फरवरी 2014

सम्पादकीय सलाहकार

गंगानन्द झा

परामर्श मंडल

वेद मित्र, एम.बी.ई., यू.के.

डॉ. रवीन्द्र अग्निहोत्री, ऑस्ट्रेलिया

अनिल जनविजय, रूस

अजय भट्ट, बैंकाक

देवेश पंत, अमेरिका

उमेश ताम्बी, अमेरिका

आशा मोर, ट्रिनिडाड

डॉ. अनिल विद्यालंकार, भारत

डॉ. ओम विकास, भारत

सम्पादक

सुषमा शर्मा

तकनीकि सहयोग

डॉ. राजीव यादव, न्यूयार्क

आकल्पन सहयोग

डॉ. बृजेश तिवारी, लखनऊ

कम्पोजिंग

प्रताप परिहार

कानूनी सलाहकार

संजीव जायसवाल

सम्पर्क

डीएक्सई-23, मीनाल रेसीडेंसी,

जे.के. रोड, भोपाल-462023 (म.प्र.) भारत.

ईमेल : garbhanal@ymail.com

आवरण छायाचित्र

साभार - गूगल

प्रकाशित रचनाओं के विचार लेखकों के अपने हैं, जरूरी नहीं है कि सम्पादक इससे सहमत हों. विवाद की स्थिति में केवल भोपाल न्यायालय क्षेत्र ही रहेगा.

>>4

भाषायी राजनीति का सियासी खेल

>>10

इंसानी जज़्बातों का शहर

>>12

परंपरागत भोजन और थैंक्सगिविंग

>>24

घर तक आ गया बाज़ार

इस अंक में

अपनी बात : गंगानन्द झा 2

मन की बात : डॉ. अमरनाथ 4

चीन की डायरी : डॉ. गंगा प्रसाद शर्मा 10

तथ्य : डॉ. कुसुम नैपसिक 12

जन्नत की हकीकत : रमेश जोशी 14

रम्य-रचना : सुधा दीक्षित 16

परख : प्रभु जोशी 18

नजरिया : उदयन वाजपेयी 21

हमारा समय : ध्रुव शुक्ल 24

चिन्तन : ब्रजेन्द्र श्रीवास्तव 26

व्याख्या : मनोज कुमार श्रीवास्तव 30

मंथन : भूपेन्द्र कुमार दवे 34

पंचतंत्र : 36

महाभारत : 38

वेद की कविता : प्रभुदयाल मिश्र 41

गीता-गीत : परेश दत्त द्वारी 42

कविता : विजय निकोर 43

अनिल के. प्रसाद 44

शकुन्तला बहादुर 46

ललिता प्रदीप 48

शायरी की बात : नीरज गोस्वामी 49

प्रतिक्रिया : 50

आपकी बात : 51

आख़िरी बात : आत्माराम शर्मा 52

विगत ५ जनवरी को अपराह्न ४ बजकर अट्ठारह मिनट पर श्रीहरिकोटा के सतीश धवन अन्तरिक्ष केन्द्र में एकत्र वैज्ञानिकों के लिए उत्कण्ठा और उत्तेजना के एक हजार सेकण्ड विरल उल्लास, उपलब्धि एवम् सफलता का एहसास देने वाले थे। ऐसा क्या अनोखापन उन एक हजार सेकण्डों का था।

GSLV D-5 रॉकेट को GSAT-14 संचार उपग्रह को कक्षा में स्थापित करने में मात्र १००० सेकण्ड लगे थे। यह प्रेक्षपण वैज्ञानिकों की बरसों की मेहनत, आविष्कार और व्यक्तिगत हितों के त्याग का नतीजा है। मिशन के निर्देशक के. शिवन के शब्दों में हजार सेकण्डों की उड़ान के पीछे वैज्ञानिकों की हजार दिनों की कठिन मेहनत और निष्ठा है।

पिछले दो दशकों के दौरान अपने ध्रुवीय उपग्रह प्रक्षेपण वाहन (PSLV) की लगातार पच्चीस सफलताओं के बदौलत भारत ने अन्तरिक्ष विज्ञान में अपने को प्रतिष्ठित कर लिया है। पर ध्रुवीय उपग्रह प्रक्षेपण वाहन (PSLV) पृथ्वी की कक्षा में दो टन तक के वजन के उपग्रह ही ले जा सकते हैं, इससे अधिक वजन के उपग्रहों को प्रक्षेपित करने के लिए भू उपग्रह प्रक्षेपण वाहन (GSLV) की जरूरत थी। खासकर दूरसंचार किस्म के उपग्रहों के लिए जिन्हें ३६,००० किलोमीटर की भूसमक्रमिक कक्षा में स्थापित करने की जरूरत होती है। इनके प्रक्षेपण के लिए क्रायोजेनिक इंजन की जरूरत होती है। बीस साल से अधिक अवधि तक के लगातार प्रयास एवम् परिश्रम तथा अनेकों असफलताओं के पश्चात् भारत देसी तकनीक से विकसित क्रायोजेनिक इंजन प्रज्वलित करने में सफल हुआ था। इस इंजन के द्वारा जीएसएल वी-५ रॉकेट प्रक्षेपित किया गया।

तीन नाकामियों के बाद देसी क्रायोजेनिक इंजन के साथ ४१४.७५ टन वजनी जीएसएलवी डी-५ रॉकेट के सफल प्रक्षेपण से भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (इसरो) के प्रमुख के राधाकृष्णन की खुशी का ठिकाना नहीं रहा। गद्गद् राधाकृष्णन ने पत्रकारों से कहा, 'मैं खुशी और गर्व के साथ कह रहा हूं कि टीम इसरो ने यह कर दिखाया है। इस मिशन के लिए जैसे मानक तय किए गए थे, उस पर भारतीय क्रायोजेनिक इंजन सौ फीसद खरा उतरा है। जीएसएलवी डी-५ द्वारा जीसेट-१४ को सफलतापूर्वक स्थापित कर दिया गया है।' उनका कहना था, 'हम ३.५ टन के संचार उपग्रह के प्रक्षेपण के लिए ५०० करोड़ की फीस चुकाया करते थे। जबकि जीएसएलवी यह काम २२० करोड़ में करेगा। जीसेट-१४ के प्रक्षेपण पर १४५ करोड़ का खर्च आया है। क्रायोजेनिक इंजन विकसित करने में बीस वर्षों की मेहनत रंग लाई। भारत के लिए यह ऐतिहासिक दिन है।'

विक्रम साराभाई स्पेस सेंटर, थिरुअनन्तपुरम् के निदेशक एस. रामाकृष्णन ने खुशी का इजहार करते हुए कहा कि 'इसरो में हम जीएसएलवी को शैतान बच्चा कहा करते थे, लेकिन आज वह नटखट बहुत ज्यादा आज्ञाकारी बालक बन गया है।'

क्रायोजेनिक इंजन प्रौद्योगिकी पर महारत हासिल करने वाले देशों में भारत छठा देश है। इसके पहले अमेरिका, रूस, जापान, चीन और फ्रांस के पास यह प्रौद्योगिकी है। इस प्रौद्योगिकी के भारत में विकास की कहानी दिलचस्प है। इस प्रौद्योगिकी को सोवियत यूनियन से हासिल करने का समझौता हुआ था, जिसके अन्तर्गत सोवियत यूनियन को यह प्रौद्योगिकी भारत को स्थानान्तरित करने के साथ तीन क्रायोजेनिक इंजन देना था। लेकिन सन १९९१ ई.

> अन्तरिक्ष कार्यक्रम की सफलता के व्यावसायिक पहलू भी हैं। देसी प्रौद्योगिकी हमें अन्य देशों पर निर्भरता से आजाद करती है। साथ ही मौलिक वैज्ञानिक अनुसंधान को प्रोत्साहन मिलता है तथा वैज्ञानिक मिजाज के विकास के लिए अनुकूल माहौल प्रस्तुत होता है।

में सोवियत यूनियन के विघटन के बाद अमेरिका के दबाव में रूस इस समझौते से मुकर जाने के बावजूद चार क्रायोजेनिक इंजन देने को सहमत हुआ था। इसरो के क्रायोजेनिक प्रोजेक्ट के तत्कालीन प्रमुख नाम्बी नारायणन अमेरिका से छिपाकर रूस से क्रायोजेनिक इंजन के महत्वपूर्ण अवयवों को भारत लाने में कामयाब रहे थे। इससे जुड़ी एक दिलचस्प कहानी है। अमेरिकी प्रतिबन्धों के भय से एयर इण्डिया ने इंजन को लादने से इनकार कर दिया था, तो नारायणन ने रूस की यूराल एयरलाइन्स का सहारा लिया था।

लेकिन इसके बाद तुरत ही नारायणन को इसरो जासूसी काण्ड में गिरफ्तार कर लिया गया और इसके नतीजे में उनकी टीम का मनोबल प्रभावित हुआ। नारायणन के अनुसार इस मामले ने संघटन के मनोबल को काफी नुकसान पहुँचाया, अन्यथा क्रायोजेनिक इंजन सन् २००१ ई. तक में ही तैयार हो गया होता।

सन् २०१० ई. की १५ अप्रैल को जीएसएलवी डी-३ का प्रक्षेपण हुआ था, पर इसका इंजन इग्निशन के ८०० मिलीसेकंड के बाद ही असफल हो गया था। इसके बाद के प्रक्षेपण के लिए इसरो ने रूसी इंजनों में से एक का इस्तेमाल करने का निर्णय लिया। लेकिन द्रव ईंधन समर्थक नाकामयाब रहा। इसके बाद १८ अगस्त सन् २०१३ को किया गया एक अन्य परीक्षण ईंधन टैंक में लीक की वजह से नाकामयाब रहा था।

देसी इंजन के दोषरहित होने के सम्बन्ध में निश्चिन्त होने के लिए पिछले तीन सालों के अन्दर ४५ अलग-अलग टेस्ट किए गए थे। ५ जनवरी का स्वदेशी तकनीक से विकसित क्रायोजेनिक इंजन का सफल प्रक्षेपण इस धीरज एवम् धुन का पुरस्कार था।

भारत में अन्तरिक्ष अनुसंधान की शुरुआत सन् १९६१ ई. परमाण्विक ऊर्जा विभाग में डॉ. होमी भाभा के नेतृत्व में हुई। सन् १९६९ ई. में भारतीय अन्तरिक्ष अनुसंधान परिषद (इसरो) की स्थापना हुई। भारत के प्रथम उपग्रह आर्यभट्ट का प्रक्षेपण सोवियत यूनियन से किया गया। सन् १९८० ई. में स्वनिर्मित प्रक्षेपण वाहन एसएलवी-३ के जरिए प्रक्षेपित पहला भारतीय उपग्रह रोहिणी था। इसके बाद भारत ने दो अधिक उन्नत रॉकेट ध्रुवीय उपग्रह प्रक्षेपण वाहन (PSLV) एवम् भू उपग्रह प्रक्षेपण वाहन जीएसएसवी विकसित किए। ध्रुवीय उपग्रह प्रक्षेपण वाहन (PSLV) पृथ्वी की कक्षा में दो टन तक के वजन के उपग्रह ही ले जा सकते हैं, इससे अधिक वजन के उपग्रहों को प्रक्षेपित करने के लिए भू उपग्रह प्रक्षेपण वाहन की जरूरत थी। खासकर दूरसंचार किस्म के उपग्रहों के लिए जिन्हें ३६,००० किलोमीटर की भूसमक्रमिक कक्षा में स्थापित करने की जरूरत होती है। इन रॉकेटों ने अब तक अनेकों संचार उपग्रह एवम् भूअवलोकन उपग्रह प्रक्षेपित किए हैं। सन् २००८ में चन्द्रायन तथा सन २०१३ ई. में मंगलायन का सफल प्रक्षेपण हुआ। उल्लेखनीय है कि एक मत के अनुसार इसरो के प्रोजेक्टस भारत जैसे विकासशील एवम् अपेक्षाकृत गरीब राष्ट्र के लिए विलासिता है। इन प्रोजेक्टों में निवेश को यह मत अपव्यय मानता है। यह विकसित देशों के काम हैं। हमारे निवेश खेती जैसे क्षेत्रों में होने चाहिए। पर हमारे नीति निर्द्धारकों ने माना कि खेती के विकास के लिए उद्योग और प्रौद्योगिकी का विकास पूर्वशर्त होगी। इससे हमारी अन्य देशों पर निर्भरशीलता समाप्त होगी। तथा अन्ततोगत्वा व्यावसायिक एवम् आर्थिक लाभ भी होंगे।

अन्तरिक्ष प्रौद्योगिकी में उपलब्धियों की बदौलत भारत को सुदूर संवेदन उपग्रहों के द्वारा दो लाख लोगों के लिए पेयजल की पहचान करने, ५००० केन्द्रों में दूर शिक्षा नेटवर्क का प्रसार करने, ३८३ अस्पतालों में टेलीमेडिसीन सुविधा लागू करने, ४७३ ग्रामीण संसाधन केन्द्र स्थापित करने तथा ऊसर भूमि से लेकर संभावित मत्स्य-ग्रहण क्षेत्रों तक का मानचित्रण करने की सुविधा उपलब्ध हुई है।

अन्त में, देसी प्रौद्योगिकी हमें अन्य देशों पर निर्भरता से आजाद करती है। साथ ही मौलिक वैज्ञानिक अनुसंधान को प्रोत्साहन मिलता है तथा वैज्ञानिक मिजाज के विकास के लिए अनुकूल माहौल प्रस्तुत होता है। इसके अलावे अन्तरिक्ष कार्यक्रम की सफलता के व्यावसायिक पहलू भी हैं। विदेशी मुद्रा की बचत होती है। अन्य देशों के मुकाबले हमारा कार्यक्रम काफी किफायती होता है, इसलिए इसरो ने अपने प्रोजेक्टों के अलावे अनेकों विदेशी ग्राहकों के प्रक्षेपण के प्रोजेक्टों को अंजाम दिया है। ऐण्ट्रिक्स कारपोरेशन, इसरो की व्यावसायिक उपशाखा है। भारत की प्रक्षेपण सुविधाएँ तुलनात्मक रूप से विश्वसनीय एवम् किफायती हैं। इसलिए इसके ध्रुवीय उपग्रह प्रक्षेपण वाहन का उपयोग वे अपने उपग्रहों के प्रक्षेपण के लिए करते रहे हैं। अब इस रुझान में बढ़ोत्तरी होगी। कारपोरेशन के प्रबन्ध निर्देशक श्री हेगड़े का मानना है कि उनकी संस्था की आय में १५ प्र.श. की वृद्धि होने का अनुमान है क्योंकि और भी अनेक देश इसरो से प्रक्षेपण के लिए सम्पर्क कर रहे हैं। इसरो के चेयरमैन के. राधाकृष्णन ने बताया कि हमें जर्मनी से ८०० किलोग्राम के आठ एवम् ब्रिटेन से ३०० किलोग्राम के तीन उपग्रहों के प्रक्षेपण का आर्डर मिला है। इसरो के वैज्ञानिकों को भरोसा है कि जीएसएल वी के भूमण्डलीय स्तर पर विश्वसनीय प्रक्षेपण वाहन की स्वीकृति मिलते ही ऐण्ट्रिक्स कारपोरेशन की आय दुगुनी से अधिक हो जाएगी। ■

ganganand.jha@gmail.com

डॉ. अमरनाथ

१९५४ में रामपुर बुजुर्ग, गोरखपुर में जन्म. गोरखपुर विश्वविद्यालय से एम.ए. और पी-एच.डी की उपाधियां प्राप्त. एक दर्जन से अधिक आलोचना की पुस्तकें प्रकाशित. हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाओं के बीच सेतु निर्मित करने एवं भारतीय भाषाओं की प्रतिष्ठा के उद्देश्य से संचालित अपनी भाषा संस्था की पत्रिका 'भाषा विमर्श' का संपादन. संप्रति - कलकत्ता विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में प्रोफेसर और भारतीय हिन्दी परिषद् के उपसभापति.

सम्पर्क : ईई-१६४ / ४०२, सेक्टर-२, साल्टलेक, कोलकाता-७०००९१ ई-मेल : amarnath.cu@gmail.com

भाषायी राजनीति का सियासी खेल

कहा जाता है कि एक साथ एक जाति सिर्फ एक ही भाषा बोलती है या बोल सकती है किन्तु दुनिया में शायद अकेली हमारी हिन्दी जाति है जो एक साथ दो भाषाएं बोलती है- हिन्दी और उर्दू। यानी, एक असंभव कार्य करती है। यह असंभव कार्य राजनीति की कुकृपा से संभव हो सका है। 'बाँटो और राज करो' की कुनीति का प्रसाद है यह जो अंग्रेजों से विरासत में हमारे देश के काले अंगरेजों ने प्राप्त कर लिया है। कहा जाता है कि एक झूठ को यदि सौ बार दुहराया जाय तो वह सच बन जाता है । 'हिन्दी और उर्दू अलग-अलग भाषाएं हैं' यह एक ऐसा झूठ है जिसे सैकड़ों क्या हजारों बार दुहराया गया है और आज यह एक सच की तरह हमारे सामने खड़ा है।

भाषा के बारे में आधिकारिक निर्णय का अधिकार सिर्फ भाषावैज्ञानिकों को है। मुझे आज तक ऐसा एक भी भाषा वैज्ञानिक नहीं मिला जिसने हिन्दी और उर्दू को अलग-अलग भाषा कहा हो। सबने हिन्दी और उर्दू को एक ही भाषा खड़ी बोली से विकसित दो अलग-अलग शैलियां माना है। उनमें केवल लिपि भेद है। वे दो भाषाएं हैं ही नहीं। एक दूसरी समस्या भी है। दुर्भाग्यवश हमारे देश के लगभग सभी राजनीतिक दल अघोषित रूप से उर्दू को मुसलमानों की भाषा के रूप में प्रोजक्ट कर रहे हैं जबकि, भाषा का संबंध मजहब से नहीं होता। यदि हिन्दी, हिन्दुओं की भाषा होती तो दक्षिण भारत के तमाम हिन्दू हिन्दी को संघ की राजभाषा बनाए जाने का विरोध क्यों करते? और यदि उर्दू मुसलमानों की भाषा होती तो बंगलादेश के मुसलमान उर्दू को पाकिस्तान की राजभाषा बनाए जाने के विरोध में शानदार कुर्बानियाँ क्यो देते? हम सभी जानते हैं कि बंगलादेश की उन शानदार कुर्बानियों की याद में संयुक्त राष्ट्र संघ के आह्वान पर सारी दुनिया में २१ फरवरी को मातृभाषा दिवस मनाया जाता है।

> *'हिन्दी और उर्दू अलग-अलग भाषाएं हैं' यह एक ऐसा झूठ है जिसे सैकड़ों क्या हजारों बार दुहराया गया है और आज यह एक सच की तरह हमारे सामने खड़ा है।*

किसी भी भाषा का स्वतंत्र अस्तित्व सिर्फ दो कारणों से होता है- पहला, प्रत्येक भाषा किसी न किसी जाति की होती है और दूसरा, हर भाषा का अपना व्याकरण होता है। उर्दू और हिन्दी का न तो व्याकरण अलग है और न तो ये अलग-अलग जातियों की भाषाएं हैं। बंगला बंगाली जाति की भाषा है, जर्मन, जर्मन जाति की। गुजराती, गुजराती जाति की

> हिन्दी-उर्दू का व्याकरण एक, वाक्य रचना एक सी, शब्द भंडार और क्रियाएं एक सी, इसलिए हिन्दी-उर्दू भाषियों की दो कौमें नहीं हैं। उनकी जाति एक है और बोल-चाल की भाषा भी एक है।

भाषा है रूसी, रूसी जाति की। अंगरेजी, अंग्रेज जाति की भाषा है तमिल, तमिल जाति की। और जैसा कि ऊपर कह आए हैं कि एक जाति एक साथ कभी दो भाषाएं नहीं बोलती, नहीं बोल सकती। हिन्दी/उर्दू की एकरूपता का विश्लेषण करते हुए डॉ. रामविलास शर्मा विस्तार से लिखते हैं, किसी जाति की भाषा समस्या पर विचार करते हुए हमें सबसे पहले उसके बोलचाल के रूप पर ध्यान देना चहिए। क्या बोल-चाल के रूप में भी हिन्दी-उर्दू दो भाषाएं है? इसमें सन्देह नहीं कि बहुत कठिन हिन्दी और बहुत कठिन उर्दू बोली जा सकती है। लेकिन हम लोग उसे बोलते नहीं हैं। प्रेमचंद का कहना ठीक था कि बोलचाल की हिन्दी और उर्दू प्रायः एक सी है। उर्दू-हिन्दी के सर्वनाम एक हैं- वह, मैं, तू, हम, वे आदि। हिन्दी-उर्दू की क्रियाएं एक ही है- जाना, खाना, सोना, पीना, करना, जीना, लिखना, पढ़ना आदि। आजमाना, गुजरना, लरजना जैसी क्रियाएं बहुत थोड़ी है। कुल मिलकर एक दर्जन से ज्यादा नहीं, जो फारसी/अरबी शब्दों के आधार पर बनी हैं। वे हिन्दी के लिए मतरूक नहीं हैं। बोलचाल में उनका प्रयोग बराबर होता है। हिन्दी-उर्दू के संबंधवाचक शब्द- मैं, पर, से, का आदि वही हैं जो हिन्दी के हैं। दोनों का मूल शब्द भण्डार भी एक है। लेकिन यहां बहुत दिन फारसी के राजभाषा रहने से हिन्दी शब्दों के फारसी या अरबी पर्यायवाची शब्द भी प्रचलित हो गए हैं जैसे देश-मुल्क, आकाश-आस्मान, धरती-जमीन, भाषा-जबान, किसान-काश्तकार, नदी-दरिया, रोगी-बीमार इत्यादि। इन शब्दों का व्यवहार बोल-चाल की हिन्दी/उर्दू में किसी भेद भाव के बिना होता है। देश, आकाश, धरती जैसे शब्द उर्दू साहित्यकारों की रचना में मिलेंगे और मुल्क, आसमान, जमीन जैसे शब्द हिन्दी साहित्यकारों की रचनाओं में। इसके सिवा हल, बैल, खेत, खलिहान, बीज, जुताई, बुआई, कारखाना, मजदूर, काम, छुट्टी आदि हजारों ऐसे शब्द हैं जिनके पर्यायवाची शब्द बोलचाल की भाषा में व्यवहृत नहीं होते, साहित्यिक भाषा मे भले होते हों। लखनऊ और हैदराबाद के हिन्दू/मुसलमान बोलचाल की भाषा में फारसी शब्दों का व्यवहार ज्यादा करेंगे, वहीं फारसी शब्दों की जगह बिहार और मध्यप्रदेश के मुसलमान हिन्दी या संस्कृत शब्दों का प्रयोग करेंगे। यह स्थानीय भेद हुआ। इससे दो भाषाओं का निर्माण नहीं होता। हिन्दी-उर्दू का व्याकरण एक, वाक्य रचना एक सी, शब्द भंडार और क्रियाएं एक सी, इसलिए हिन्दी-उर्दू भाषियों की दो कौमें नहीं हैं। उनकी जाति एक है और बोलचाल की भाषा भी एक है। (भाषा और समाज, रामविलास, शर्मा, पृष्ठ-३५७)

असली कारण लिपि भेद है। लिपि लिखने के काम आती है न कि बोलने के। बोलचाल के स्तर पर हिन्दी-उर्दू में कोई भेद नहीं है। हिन्दी/उर्दू का यह अलगाव हमारे जातीय विकास के लिए घातक है। भारत के हर जातीय प्रदेश की भाषा और लिपि एक हो लेकिन हिन्दी प्रदेश की दो लिपियां और दो भाषाएं हों, यह हिन्दी क्षेत्र की जातीय एकता को खंडित करने की साजिश है जिसका हमें पूरी दृढ़ता के साथ पर्दाफाश करना होगा। हम यहाँ यह भी कहना चाहते हैं कि हिन्दी और उर्दू का साहित्य भी एक ही है और उसका इतिहास भी एक ही है।

भारत और ईरान का सांस्कृतिक और व्यापारिक संबंध बहुत पुराना है। हमारी प्राचीन 'स' ध्वनि ईरान की अवेस्ता आदि में 'ह' उच्चरित होती रही है। जैसे सप्त (संस्कृत) - हफ्त (अवेस्ता), असुर (संस्कृत) - अहुर (अवेस्ता)। इसी कारण संस्कृत के 'सिन्धु' और 'सप्तसिन्धवः' आदि शब्द अवेस्ता में 'हिन्दु' और 'हफ्तहिन्दवः' आदि रूप में मिलते हैं। प्राचीन ईरानी साहित्य में 'हिन्दु' शब्द नदी के अर्थ में तो प्रयुक्त हुआ ही है साथ ही सिन्धु नदी के पास के प्रदेश के अर्थ में भी प्रयुक्त हुआ है। बलाघात के कारण कालान्तर में 'हिन्दु' का अन्त्य 'उ' लुप्त हो गया और इस प्रकार यह शब्द हिन्दु से 'हिन्द' हो गया। आगे चलकर 'हिन्द' शब्द में ईरानी के विशेषणार्थक प्रत्यय 'क' जुड़ने से 'हिन्दीक' शब्द बना जिसका अर्थ था 'हिन्द का'। इसी 'हिन्दीक' का विकास (क के लुप्त हो जाने के कारण) हिन्दी के रूप में हुआ। इस प्रकार हिन्दी का मूल अर्थ है 'हिन्द का' या 'भारतीय'। इस अर्थ में हिन्दी शब्द का प्रयोग मध्यकालीन फारसी तथा अरबी आदि में अनेक स्थलों पर हुआ है। यद्यपि आज यह शब्द हिन्दी भाषा के अर्थ में रूढ़ हो गया है किन्तु इसके साथ ही यह शब्द 'हिन्द का निवासी' अर्थात 'हिन्दी जाति' के अर्थ में भी बराबर प्रयुक्त होता रहा है। डॉ. इकबाल के मशहूर तराने- 'हिन्दी हैं हम वतन है हिन्दोस्तां हमारा' में भी इसी अर्थ में हिन्दी शब्द का इस्तेमाल हुआ है। यहां 'हिन्दी' शब्द 'हिन्दी जाति' का अर्थ दे रहा है।

भाषा के अर्थ में 'हिन्दी' शब्द का प्रयोग फारस और अरब से ही प्रारंभ होता है। छठीं सदी ई. के कुछ पूर्व से ही ईरान में 'जबान-ए-हिन्दी' का प्रयोग भारतीय भाषाओं के लिए होता रहा है। उदाहरणार्थ ईरान के प्रसिद्ध बादशाह नौसेरवाँ (५३१-५७९ ई.) ने 'पंचतंत्र' का अनुवाद कराया जिसकी भूमिका में लिखा गया है कि यह अनुवाद 'जबान-ए-

हिन्दी' से किया गया है। यहां स्पष्ट ही 'जबान-ए-हिन्दी' का प्रयोग भारतीय भाषा या संस्कृत के लिए हुआ है। इसी तरह महाभारत के कुछ भागों का अनुवाद पहलवी भाषा में किया गया है और वहाँ भी लिखा गया है कि इसकी मूल भाषा 'जबान-ए-हिन्दी' है। सन् १४२४ में सरफुद्दीन यज्दी ने तैमूर और उसके परिवार के संबंध में 'ज़फरनामा' नामक ग्रंथ लिखा । इसमें एक स्थान पर आता है कि 'राव' हिन्दी शब्द है। डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार विदेशों में हिन्दी भाषा के लिए हिन्दी शब्द का संभवतः यह प्रथम प्रयोग है।

भारत वर्ष में भी भाषा के अर्थ में हिन्दी शब्द के प्रयोग का प्रारंभ मुसलमानों द्वारा ही किया गया। भारतीय परंपरा में प्रचलित भाषा के लिए प्राचीन काल से ही 'भाखा' या 'भाषा' शब्द का प्रयोग होता आया है। उदाहरणार्थ 'संस्कृत कविता कूप जल भाषा बहता नीर' (कबीर), 'आदि अन्त जसि कथ्या अहै, लिखि भाषा चौपाई कहै' (जायसी), 'भाषा भनिति मोर मति थोरी' (तुलसी), 'भाषानिबद्ध मति मंजुल मातनोति' (तुलसी), 'भाषा बोल न जानहीं जाके कुल के दास' (केशव दास) आदि कथन उल्लेखनीय है। संस्कृत आदि के ग्रंथों की हिन्दी टीकाओं में 'भाषा टीका' रूप में यह शब्द उसी अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। १९ फरवरी १८०२ को फोर्ट विलियम कालेज द्वारा 'भाषा मुंसी' की मांग की स्वीकृति तथा लल्लू लाल को उक्त कालेज के कागजों में 'भाषा मुंसी' कहे जाने से पता चलता है कि 'हिन्दी' के लिए 'भाषा' शब्द का प्रयोग आधुनिक काल तक चलता रहा है।

बारहवीं सदी में जब मुसलमान यहां आए तो वे यहाँ की भाषा को 'जबान-ए-हिन्दी' कहने लगे। उनका विशेष संबंध मध्यदेश से था। अतः धीरे-धीरे इसकी मध्यदेशीय बोली के लिए उन्होंने 'जबान-ए-हिन्दी' या 'हिन्दी जबान' या 'हिन्दी' नाम का इस्तेमाल किया।

भाषा के अर्थ में 'हिन्दुई' या 'हिन्दुवी' शब्द का प्रयोग अमीर खुसरो (१२५५ ई.-१३२५ ई.) ने कई स्थलों पर किया है। उन्होंने लिखा है, 'तुर्क हिन्दुस्तानियम मन हिन्दवी गोयम जवाब।' अर्थात, 'मैं हिन्दुस्तानी तुर्क हूँ, हिन्दवी में जवाब देता हूँ।' हिन्दवी की तुलना में निश्चित रूप से हिन्दी शब्द नया है। जायसी ने भी लिखा है, 'तुरकी अरबी हिन्दवी भाषा जेती आहि। जामे मारग प्रेम का सबै सराहे ताहि?'

हिन्दी शब्द का प्रारंभिक प्रयोग जब भी और जिसके द्वारा भी हुआ हो पर इसके अविच्छिन्न प्रयोग की प्राचीन परंपरा 'दक्खिनी हिन्दी' के कवियों-गद्यकारों में ही मिलती है। उदाहरणार्थ शाही मीराजी (१४७५) 'यों देखत हिन्दी बोल', शाह बुर्हानुद्दीन (१५८२) 'ऐब न राखें हिन्दी बोल' मुल्ला वजही (१६३५), 'हिन्दोस्तां में हिन्दी जबान सों' जुनूनी (१६९०) 'मैं इसको दर हिन्दी जबां इस वास्ते कहने लगा।' आदि कथन उल्लेखनीय हैं।

इतना ही नही, १९वीं सदी के मध्य तक तथाकथित उर्दू के लेखकों में प्रायः इसका प्रयोग उर्दू या रेख्तां के समानार्थी के रूप में चल रहा था। हातिम (१८वीं सदी का उत्तरार्ध), नासिख (१७५७-१८३८), सौदा (१७१३-१७८०), मीर (१७२५-१८१०) आदि ने अनेक बार अपने शेरों को 'हिन्दी शेर' कहा है। मिर्जा गालिब ने अपने खतों में उर्दू, हिन्दी तथा रेख्तां को कई स्थलों पर समानार्थी शब्दों के रूप में प्रयुक्त किया है। मीर तकी मीर अपनी भाषा को हिन्दी कहते थे। उनका एक मशहूर शेर है :

क्या जानूँ लोग कहते हैं किसको सरूरे कल्ब
आया नहीं है लफ्ज ये हिन्दी जबाँ के बीच।

फोर्ट विलियम कालेज के हिन्दुस्तानी विभाग के पहले प्रोफेसर जान गिल क्राइस्ट हिन्दी, उर्दू और हिन्दुस्तानी के बीच केवल शैली भेद मानते थे। उनकी एक व्याकरण की पुस्तक प्रकाशित है जिसका नाम है, 'कवानीन सर्फ़ व नह्व हिन्दी।' पुस्तक में अंग्रेजी में लिखा है 'रूल्स आफ हिन्दी ग्रामर'। इसकी भाषा आज की कठिन उर्दू है।

१८१२ में फोर्ट विलियम कालेज के वार्षिक विवरण में कैप्टन टेलर लिखते हैं, 'मैं केवल हिन्दुस्तानी या रेख्ता का जिक्र कर रहा हूँ, जो फारसी लिपि में लिखी जाती है... मैं हिन्दी का जिक्र नहीं कर रहा जिसकी अपनी लिपि है। जिसमें अरबी/फारसी शब्दों का प्रयोग नहीं होता और मुसलमानी आक्रमण से पहले जो भारतवर्ष के समस्त उत्तर-पश्चिम प्रान्त की भाषा थी। (इंपीरियल रिकार्ड, वाल्यूम-४, पृष्ठ-२७६-२७७) १८२४ ई. में उक्त कालेज के हिन्दी प्रोफेसर विलियम प्राइस ने स्पष्ट शब्दों में हिन्दी के लगभग सभी शब्दों के संस्कृत में होने की बात कही तथा हिन्दुस्तानी के शब्दों के अरबी-फारसी के होने की। १८२५ ई. में कालेज के वार्षिक अधिवेशन के भाषण में लार्ड हेमहर्स्ट ने हिन्दी भाषा को हिन्दुओं से संबद्ध कहा तथा उर्दू को उनके लिए उतनी ही विदेशी कहा जितनी अंग्रेजी।

अब हम उर्दू की चर्चा करेंगे। उर्दू मूलतः तुर्की भाषा का शब्द है। इसका मूल अर्थ है 'शाही शिविर' या 'खेमा'। आक्रमणकारी मुसलमान फौजी पड़ावों में रहते थे तथा वहाँ उनका जरूरी चीजों के लिए बाजार भी होता था। सेना के बाजार के अर्थ में ही भारत के कई शहरों में 'उर्दू बाजार' नाम मिलता है।

मुगल बादशाहों के फौजी पड़ावों के लिए भी 'उर्दू' शब्द चलता था। इन बादशाहों के सिक्के कभी-कभी पड़ावों में भी ढालने पड़ते थे।

> *भाषा के अर्थ में 'हिन्दुई' या 'हिन्दुवी' शब्द का प्रयोग अमीर खुसरो (१२५५ ई.-१३२५ ई.) ने कई स्थलों पर किया है। उन्होंने लिखा है, 'तुर्क हिन्दुस्तानियम मन हिन्दवी गोयम जवाब।' अर्थात, 'मैं हिन्दुस्तानी तुर्क हूँ, हिन्दवी में जवाब देता हूँ।'*

> भाषा के नाम के लिए 'जबान-ए-उर्दू-ए-मुअल्ला' शब्द बड़ा था, इसीलिए धीरे-धीरे प्रयोग में आने पर यह छोटा होने लगा। पहले मुअल्ला शब्द हटा और यह 'जबान-ए-उर्दू' कही जाने लगी। बाद में जबान भी हट गया और केवल 'उर्दू' रह गई।

इसीलिए सिक्कों पर टकसाल का नाम प्रायः 'उर्दू' लिखा मिलता है। बाबर के कुछ सिक्कों पर 'उर्दू' लिखा है। अकबर के भी कुछ सिक्कों पर 'उर्दू-ए-जफर करीन' अर्थात 'विजयी शाही पड़ाव' लिखा है। जहाँगीर ने कभी दक्षिण जाते समय रास्ते में अपने शाही पड़ाव में सिक्के ढलवाए थे। उसके एक सिक्के पर लिखा है 'उर्दू-दर-राहे-दक्कन' अर्थात 'दक्षिण की राह में का पड़ाव'।

शाहजहाँ ने अपनी राजधानी आगरा से दिल्ली बदल ली और अपने नाम पर शाहजहाँबाद आबाद किया। यहाँ उसने लाल किला बनवाया। यह भी एक तरह से उसका शाही फौजी पड़ाव अर्थात उर्दू था। स्थाई, बड़ा तथा सुन्दर होने को कारण इसका नाम मात्र उर्दू न होकर 'उर्दू-ए-मुअल्ला' हो गया। 'मुअल्ला' अरबी भाषा का शब्द है और इसका अर्थ है 'श्रेष्ठ'। अर्थात यह श्रेष्ठ शाही पड़ाव था।

इस शाही पड़ाव की भाषा कदाचित् एक निश्चित रूप ले चुकी थी। अतः इस भाषा को 'जबान-ए-उर्दू-ए-मुअल्ला' अर्थात श्रेष्ठ शाही पड़ाव की भाषा कहा गया। भाषा के नाम के लिए 'जबान-ए-उर्दू-ए-मुअल्ला' शब्द बड़ा था, इसीलिए धीरे-धीरे प्रयोग में आने पर यह छोटा होने लगा। पहले मुअल्ला शब्द हटा और यह 'जबान-ए-उर्दू' कही जाने लगी। बाद में जबान भी हट गया और केवल 'उर्दू' रह गई।

उर्दू के साथ फारसी लिपि के जुड़ने का ऐतिहासिक कारण है। दरअसल किसी भी व्यक्ति के लिए दूसरे भाषा-भाषियों के संपर्क में आने पर उनकी भाषा सीखना तो आसान होता है किन्तु उसकी तुलना में लिपि सीखना कठिन होता है। भारत में आने वाली तुर्क, पठान, मुगल आदि विभिन्न जातियों की भाषाएं यद्यपि अलग-अलग तुर्की, पश्तो आदि थीं किन्तु उनके शासन की भाषा फारसी थी। शासन से जुड़े हुए लोग फारसी के जानकार होते थे। दिल्ली के बाजार के संपर्क में जब वे लोग आए तो उनके लिए संवाद की विवशता के चलते दिल्ली की भाषा समझना तो मजबूरी थी किन्तु लिपि समझना कठिन। उन लोगों ने दिल्ली की हिन्दवी को फारसी लिपि में लिखना आरंभ किया। यह उनकी मजबूरी थी। इस तरह वे देवनागरी सीखने की समस्या से बच जाते थे और हिन्दवी सीख कर हिन्दुस्तान की जनता से संवाद भी स्थापित कर लेते थे। उनकी अपनी भाषा फारसी होने के कारण उनकी हिन्दी में अरबी-फारसी के शब्द भरे रहते थे। इस तरह हिन्दवी के लिए फारसी लिपि प्रचलन में आयी जिसे बाद में हिन्दुस्तानी या उर्दू कहा गया। फारसी का शासन की भाषा होने के कारण उसकी लिपि का व्यापक प्रसार होना स्वाभाविक था।

बहरहाल, उर्दू शब्द बहुत पुराना है किन्तु भाषा के अर्थ में इसका व्यापक प्रयोग उन्नीसवीं सदी के आरंभ मे ही व्यवहार में आ सका। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, १९वीं सदी के प्रथम २५ वर्षों में एक ओर हिन्दी-देवनागरी-संस्कृत-हिन्दू शब्दों को जोड़ दिया गया तो दूसरी ओर हिन्दुस्तानी-रेख्तां या उर्दू- फारसी लिपि-अरबी फारसी शब्द मुसलमान को। संभवत शासन के ही इशारे पर १८६२ ई. में हिन्दी-उर्दू का प्रश्न शिक्षा के संयोजकों के समक्ष आया और इस प्रकार हिन्दी-उर्दू का वर्तमान रूप तय हो गया।

शम्सुर्रहमान फारुकी ने इस पूरे प्रसंग को एक घटना के हवाले से इस तरह व्यक्त किया है, आधुनिक हिन्दुस्तानी इतिहासकारों में डॉ. ताराचंद ने उर्दू- हिन्दी मामले के पीछे छिपी हुई राजनीति का खुल्लमखुल्ला जिक्र किया है। १९३९ में आल इंडिया रेडियो, देहली ने 'हिन्दुस्तानी क्या है' शीर्षक से कुछ व्याख्यान आयोजित किए। व्याख्याता थे डॉ. ताराचंद, मौलवी अब्दुल हक, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, डॉ. जाकिर हुसेन, पंडित दत्रात्रेय कैफी और आसिफ अली। वह समय और वह विषय, दोनों ही आवेश और भावनाओं से भरे हुए थे। उर्दू का मामला पंडित कैफी और मौलवी अब्दुल हक ने सबसे ज्यादा शक्ति और तर्क के साथ पेश किया। डॉ. ताराचंद ने मामले की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और विश्लेषण औरों की तुलना में अधिक विस्तार और सफाई से बयान किया। ये व्याख्यान उपर्युक्त छह व्यक्तियों ने उपर्युक्त लिखित क्रम से २० फरवरी १९३९ से २५ फरवरी १९३९ तक आल इंडिया रेडियो दिल्ली से पेश किए। इसके कुछ समय बाद इन्हें मक्तबाए जामिया ने आल इंडिया रेडियो की अनुमति से 'हिन्दुस्तानी' शीर्षक से किताब के रूप में छापी। ताराचंद ने कहा, हिन्दुओं के लिए लल्लूलाल जी, सदल मिश्र, बेनी नारायण को (फोर्ट विलियम कालेज की आलाकमान से) हुक्म मिला कि गद्य की किताबें तैयार करें। उन्हें और भी अधिक मुश्किलों का सामना करना पड़ा। अदब या साहित्य की भाषा तो ब्रज थी लेकिन इसमें गद्य नाम ही के लिए था। क्या करते उन्होंने रास्ता ये निकाला कि मीर अम्मन, अफसोस वगैरा की भाषा को अपनाया। पर इसमें फारसी-अरबी के शब्द छाँट दिए और संस्कृत और हिन्दी (ब्रज और दूसरी बोलियों के) शब्द रख दिए... इस तरह दस साल से भी कम मुद्दत में दो नयी भाषाएं अपने असली पालने से सैकड़ों कोस की दूरी पर विदेशियों के इशारे पर बन-सँवर, रंगमंच पर आ खड़ी हुईं। दोनों की सूरत-मूरत एक थी, क्योंकि दोनों एक ही माँ की बेटियाँ थीं। फिर दोनों के सिंगार, कपड़े और जेवर में कुछ फर्क न था। पर दोनों के मुख एक-दूसरे से फिरे हुए थे। इस जरा सी बेरुखी ने देश को दुविधा में डाल दिया और उस दिन

से आज तक हम अलग-अलग दुराहों पर भटक रहे हैं। (उर्दू का आरम्भिक युग, शम्सुर्रहमान फारुकी, पृष्ठ-४२)

फारुकी साहब ने अपनी उक्त पुस्तक के आरंभ में ही लिखा है, हिन्दी/उर्दू साहित्य के इतिहास के नाम से आज तक जो धारणाएं हमारे देश में प्रचलित हैं, उनका बड़ा हिस्सा केवल नामकरण के संयोग पर आधारित है। हम लोग इस बात को अक्सर भूल जाते हैं कि जिस भाषा को आज हम उर्दू कहते हैं, पुराने जमाने में उसी भाषा को हिन्दवी, हिन्दी, देहलवी, गूजरी, दकनी और फिर रेख़्ता कहा गया है। और ये नाम लगभग उसी क्रम में प्रयोग मे आए, जिस क्रम में मैंने इन्हें दर्ज किया है । यह जरूर है कि इस भाषा का जो रूप दकन (दक्षिण) में बोला और लिखा जाता था, उसे सत्रहवीं शताब्दी से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी के लगभग मध्य तक 'दकनी' ही कहते थे। और उत्तर भारत में एक बड़े समय तक 'रेख़्ता' और 'हिन्दी' दोनों ही इस भाषा के नाम की हैसियत से साथ-साथ इस्तेमाल होते रहे। (उर्दू का आरंभिक युग शम्सुर्रहमान फारुकी, पृष्ठ-११)

फिलहाल, डॉ. ताराचंद, ग्राहम वेली, एहतेशाम हुसेन आदि अधिकांश विद्वानों ने मुसहफी के निम्नलिखित शेर को उद्धृत किया है और बताया है कि भाषा के अर्थ में 'उर्दू' शब्द का यही पहला प्रयोग है। मुसहफी का वह शेर निम्नलिखित है-

खुदा रख्खे जबां हमने सुनी है मीर ओ मिर्जा की
कहें किस मुंह से हम ऐ मुसहफी उर्दू हमारी है

मुसहफी की मृत्यु १८२४ ई. में हुई थी, इसलिए अनुमान किया जा सकता है कि १८०० के आस-पास यह शेर लिखा गया होगा। शम्सुर्हमान फारुकी लिखते हैं, ऐसा प्रतीत होता है कि यहां मिर्जा से मुराद मिर्जा मुहम्मद रफी सौदा हैं। सौदा का निधन जून १७८१ में हुआ। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि यह शेर जून १७८१ से पहले का होगा। लेकिन कितना पहले का, यह बात साफ नहीं होती। फिर उन्होंने बड़ी छान-बीन के बाद निष्कर्ष निकाला है कि, इसलिए यह शेर १७७१ और १७७३ के बीच का हो सकता है।

वैसे यह भी ध्यान रखने की बात है कि मुसहफी के पहले दीवान (संकलन काल लगभग १७८५ ई.) में यह शेर भी संकलित है-

मुसहफी फारसी को ताक पे रख
अब है अशआर-ए-हिन्दवी का रिवाज

बहरहाल, आधुनिक परिनिष्ठित हिन्दी की तरह उर्दू भी मूलतः दिल्ली के आस पास की खड़ी बोली पर आधारित है, जिसमें कुछ रूप पूर्वी पंजाबी, बांगरू तथा ब्रजी के भी हैं। इस प्रकार व्याकरणिक दृष्टि से हिन्दी-उर्दू कुछ अपवादों को छोड़कर प्रायः एक ही है। अन्तर केवल शब्दावली का है। उर्दू को हिन्दी का अरबी-फारसी शब्दावली से युक्त शैली कहना ही

> *हिन्दी-उर्दू के मशहूर लेखक बालमुकुन्द गुप्त ने लिखा है, इस समय हिन्दी के दो रूप हैं एक उर्दू और दूसरा हिन्दी। दोनों में केवल शब्दों का ही नहीं, लिपि भेद बड़ा भारी पड़ा हुआ है। यदि यह भेद न होता तो दोनों रूप मिलकर एक हो जाते।*

अधिक समीचीन है। दोनों का व्याकरण पूर्णतया एक होने और भौगोलिक क्षेत्र एक होने के कारण इन्हें अलग भाषाएं मानना न तो व्यावहारिक है और न वैज्ञानिक।

हिन्दी /उर्दू के वे लेखक, जिन्हें दोनों भाषाओं का इल्म है, जो दोनों में लिखते रहे हैं, जिन्हे दोनों भाषाओं के साहित्य की जानकारी है उन्होंने इस विषय पर अपने दो टूक राय देने में कभी संकोच नहीं किया है। ८ सितंबर १८७३ की 'कविवचन सुधा' में भारतेन्दु 'हिन्दी और उर्दू' शीर्षक से लिखते हैं, हिन्दी और उर्दू में अन्तर क्या है? हम बिना संकोच के कह सकते हैं कि भाषाओं में कुछ अन्तर नहीं है क्योंकि व्याकरण की विभक्तियाँ और नियम दोनों के एक हैं पर इतना ही अन्तर है कि हिन्दी में जिसके लिए हिन्दी शब्द नहीं मिलता वहाँ संस्कृत के शब्द काम मे आते हैं और उर्दू में सहज हिन्दी शब्द होने पर भी जहाँ शब्द नहीं मिलते वहां तो अवश्य ही अरबी और फारसी के शब्द लिखे जाते हैं, यही दोनों में अन्तर है। (कविवचन सुधा, ८ सितंबर १८७३ ई.)

उल्लेखनीय है कि भारतेन्दु उर्दू में 'रसा' नाम से गजलें भी लिखते थे। एक दूसरे हिन्दी-उर्दू के मशहूर लेखक बालमुकुन्द गुप्त ने लिखा है, इस समय हिन्दी के दो रूप हैं एक उर्दू और दूसरा हिन्दी। दोनों में केवल शब्दों का ही नहीं, लिपि भेद बड़ा भारी पड़ा हुआ है। यदि यह भेद न होता तो दोनों रूप मिलकर एक हो जाते। यदि आदि से फारसी लिपि के स्थान में देवनागरी लिपि रहती तो यह भेद ही न होता। अब भी लिपि एक होने से भेद मिट सकता है। पर जल्द ऐसा होने की आशा कम है। अभी दोनों रूप कुछ काल तक अलग-अलग अपनी-अपनी चमक-दमक दिखाने की चेष्टा करेंगे। आगे समय जो करावैगा वही होगा। (बालमुकुन्द निबंधावली, पृष्ठ-११०)

मुंशी प्रेमचंद के विचार हैं, उर्दू वह हिन्दुस्तानी जबान है जिसमें फारसी/अरबी के लफ्ज ज्यादा हों उसी तरह हिन्दी वह हिन्दुस्तानी है, जिसमें संस्कृत के शब्द ज्यादा हों। लेकिन जिस तरह अंग्रेजी में चाहे लैटिन या ग्रीक शब्द अधिक हों या एंग्लोसेक्सन, दोनों ही अंग्रेजी हैं, उसी भाँति हिन्दुस्तानी भी अन्य भाषाओं के शब्दों के मिल जाने से कोई भिन्न भाषा नहीं हो जाती। (मुशी प्रेमचंद, साहित्य का उद्देश्य, पृष्ठ-१२४) और उर्दू के मशहूर शायर तथा हिन्दी के सुविख्यात कथाकार राही मासूम रजा का तो कहना है, मैं शायद उर्दू का अकेला शायर हूँ जिसने यह कहने की हिम्मत की है कि उर्दू और हिन्दी दो अलग-अलग भाषाएं नहीं हैं। मैंने यह चेतना बहुत महँगे दामों में खरीदी है और

लोग कहते हैं कि मैं बिक गया हूँ। (राही मासूम रजा, लगता है बेकार गए हम, पृष्ठ-७२)

और हमारे राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने तो यही सोचकर आजाद भारत की राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दुस्तानी का प्रस्ताव किया था। यह देश का दुर्भाग्य है कि उनके प्रस्ताव पर अमल नहीं हो सका।

हमारे देश में दसवीं-ग्यारहवीं सदी में ही तुर्क, पठान, मुगल आदि जातियाँ आ चुकी थीं। स्वाभाविक रूप से ये जातियां अलग-अलग भाषाएं बोलती थीं किन्तु इनमें समानता यह थी कि ये सभी इस्लाम को मानने वाली थीं और शासन के लिए ये फारसी का इस्तेमाल करती थीं। इसीलिए भारत में इन सभी जातियों ने शासन के लिये एक मात्र फारसी का इस्तेमाल किया। पूरे छह सौ वर्ष तक हमारे देश में फारसी शासन की भाषा के रूप में प्रतिष्ठित रही। बाद में अंग्रेजी और देशी भाषाओं को भी थोड़ा-बहुत मौका मिला।

हिन्दुओं और मुसलमानों का इतने लम्बे दिनों तक साथ रहने के बावजूद अंग्रेजों के आने के पहले इतिहास में साम्प्रदायिक दंगों का कोई जिक्र नहीं मिलता। अनेक शासकों ने गैर मुसलमानों पर जजिया कर जरूर लगाया। औरंगजेब जैसे कट्टर शासकों ने गैर मुस्लिमों पर अत्याचार भी किए। अनेक मन्दिर तोड़ डाले गए। किन्तु हिन्दू और मुस्लिम जनता आमने सामने आ गई हो-ऐसा उदाहरण इतिहास में नहीं मिलता। दोनों मजहब के लोग सदियों से साथ-साथ मिलजुल कर रहते आए थे और साथ रहने के अभ्यस्त थे किन्तु अंग्रेजों ने बांटो और राज करो की नीति अपना कर ही इस देश में शासन करना आरंभ किया और उसी से उन्हें सफलता मिली। अंग्रेजों ने अपनी इस नीति को अन्त तक जारी रखा। उनके द्वारा उठाए गए हर कदम का विश्लेषण करने पर उनकी यह नीति उसमें छिपी मिलेगी।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि किसी जाति को जोड़ने का सबसे महत्वपूर्ण तत्व है भाषा। हम यह भी पहले बता चुके हैं कि फोर्ट विलियम कालेज के हिन्दुस्तानी (हिन्दी नहीं) विभाग के पहले अध्यक्ष जॉन बोर्थविक गिलक्राइस्ट ने सबसे पहले भाषा को मजहब से जोड़ा, एक ही भाषा की तीन शैलियाँ-हिन्दवी, उर्दू और हिन्दुस्तानी घोषित की, उनमें भेद किया और उन्हें हिन्दुओं और मुसलमानों से जोड़कर उनके बीच साम्प्रदायिक तनाव पैदा करने की जमीन तैयार की। वे हिन्दवी शैली को सिर्फ हिन्दुओं में प्रचलित मानते थे और इसे गँवारू कहते थे। हिन्दुस्तानी ही उनकी निगाह में दि ग्रैंड पापुलर स्पीच आफ हिन्दोस्तान थी। इस नाम को प्रचलित करने का श्रेय उन्हीं को है। वे मानते थे कि हिन्दुस्तानी का थोड़ा सा ही अध्ययन करके यह समझा जा सकता है कि इसका आधार पुरानी हिन्दवी या ब्रज भाखा है जिसमें अरबी-फारसी शब्दों का सम्मिश्रण होते जाने की वजह से एक नई भाषा हिन्दुस्तानी तैयार हुई।

> *फोर्ट विलियम कालेज के हिन्दुस्तानी विभाग के पहले अध्यक्ष जॉन बोर्थविक गिलक्राइस्ट ने सबसे पहले भाषा को मजहब से जोड़ा, एक ही भाषा की तीन शैलियाँ-हिन्दवी, उर्दू और हिन्दुस्तानी घोषित की, उनमें भेद किया और उन्हें हिन्दुओं और मुसलमानों से जोड़कर उनके बीच साम्प्रदायिक तनाव पैदा करने की जमीन तैयार की।*

इसी तरह सर जार्ज ग्रियर्सन ने अपने लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इंडिया में आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं का वर्गीकरण करते हुए तीन तरह की हिन्दी का जिक्र किया है-पूर्वी हिन्दी, पश्चिमी हिन्दी और बिहारी। इन भाषाओं में भेद दृष्टि का विवेचन करते समय ग्रियर्सन महोदय की दृष्टि काफी उदार है। ग्रियर्सन की उक्त भेद दृष्टि का ही असर है कि बाद में प्रख्यात भारतीय भाषा वैज्ञानिक डॉ. सुनीति कुमार चाटुर्ज्या ने भी हिन्दी को इसी तरह उपभाषाओं में बाँटकर देखा और आज भी हम अपने विद्यार्थियों को इसी तरह का अवैज्ञानिक वर्गीकरण पढ़ा रहे हैं, जबकि आज जरूरी है हम अपनी नयी पीढ़ी को यह जोर देकर बताएं कि हिन्दी एक है और बाकी उसकी बोलियाँ है। बीच में कोई उपभाषा जैसी वस्तु नहीं होती। यह उपभाषा की अवधारणा हमें भ्रमित करती है और हमारे जातीय गठन में बाधा डालती है।

अंग्रेजों की वह भेद दृष्टि आजादी के बाद भी यथावत जारी है। यह एक सच्चाई है कि १९४७ में सत्ता का केवल हस्तांतरण हुआ था। व्यवस्था में कोई भी बुनियादी परिवर्तन नहीं हुआ था। सत्ता गोरी चमड़ी वाले अंग्रेजों के हाथ से काली चमड़ी वाले अंग्रेजों के हाथ आ गई थी। जाहिर है, सत्ताधारी वर्ग की ज्यादातर नीतियां वही थी। बाँटो और राज करो की नीति बदस्तूर जारी रही। भाषा के मामले में भी मैकाले की नीति ही जारी रही। बल्कि अंग्रेजी का प्रभुत्व और भी बढ़ता गया। दूसरी ओर अघोषित रूप से उर्दू को मुसलमानों से जोड़कर देखने की प्रवृति विकसित हुई। संविधान की आठवीं अनुसूची में उर्दू को भी शामिल कर लिया गया। यद्यपि भाषा वैज्ञानिक कहते रहे कि उर्दू-हिन्दी एक ही भाषा की दो शैलियाँ मात्र हैं। वे अलग-अलग भाषाएं नहीं हैं। किन्तु सत्ताधारी वर्ग की रुचि तो अलगाव के तत्व ढूँढने की होती है, समानता के सूत्र ढूँढना उनका मकसद नहीं होता। हिन्दी प्रदेश की कई राज्य सरकारों ने आजादी के तुरन्त बाद से मुसलमानों को खुश करने और वोट पाने की लालसा में उर्दू को दूसरी राजभाषा बनाना शुरू कर दिया और आज हिन्दी प्रदेश की अधिकाँश राज्य सरकारों ने उर्दू को दूसरी राज भाषा घोषित कर रखा है। बल्कि कई अहिन्दी भाषी राज्यों की राज्य सरकारों ने भी अपने-अपने राज्यों की राज भाषा उर्दू को घोषित कर रखा है। कई राज्यों में हिन्दी अकादमियां भले मरणासन्न हो, उर्दू अकादमियाँ खूब फल-फूल रही हैं।■

डॉ. गंगा प्रसाद शर्मा 'गुणशेखर'

१ नवम्बर १९६२ के समशेर नगर, बहादुर गंज, सीतापुर, उत्तर प्रदेश में जन्म। विगत दो दशकों से साहित्य सृजन में सक्रिय। 'दलित साहित्य का स्वरूप विकास और प्रवृत्तियाँ' पुस्तक प्रकाशित। शिरोमणि सम्मान (साहित्य, कला परिषद जालौन) तथा तुलसी सम्मान (मानस स्थली, सूकरखेत, उत्तर प्रदेश) से सम्मानित। सम्प्रति- आचार्य, हिन्दी विभाग, गुआंगदांग अंतर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय, ग्वान्जाऊ,चीन।

सम्पर्क : dr.gunshekhar@gmail.com

चीन की डायरी

इंसानी जज़्बातों का शहर

चीन के ग्वान्जाऊ शहर की धरती पर उतरे हुए कोई बीस दिन हो रहे हैं। नया देश। नई संस्कृति। खान-पान, रहन-सहन और पहनावा आदि सब कुछ अपने से बहुत कुछ भिन्न। महिलाएँ और पुरुष दोनों पैंट-शर्ट पहनते हैं। दोनों समान रूप से साइकिल, कार और मोपेड आदि चलाते हुए मिलते हैं। दोनों नौकरी, व्यवसाय और किसानी के सच्चे सहभागी। दोनों में इतनी बराबरी कि प्राकृतिक भेद के अलावा इन्हें कहीं और किसी तरह से भी अलगाना बेहद मुश्किल। यानी सही मायनों में स्त्री-पुरुष में पूरा बराबरी का दर्ज़ा।

> दोनों नौकरी, व्यवसाय और किसानी के सच्चे सहभागी। दोनों में इतनी बराबरी कि प्राकृतिक भेद के अलावा इन्हें कहीं और किसी तरह से भी अलगाना बेहद मुश्किल। यानी सही मायनों में स्त्री-पुरुष में पूरा बराबरी का दर्ज़ा।

सड़क पर चलते हुए अब तक एक भी महिला चप्पलों में नहीं देखी। हाँ, कोई एक सप्ताह पहले एक पुरुष को ज़रूर चप्पलों में देखा था। उस दिन मैं भी कुछ खरीदने के वास्ते दो-तीन सौ मीटर की दूरी चप्पलों में ही तय कर रहा था। संभवतः यही स्थिति सामने वाली की मानते हुए मैंने बाद में चप्पलें पहन कर बाहर न निकलने का फैसला कर लिया। तब से निरंतर जूतों में ही बाहर निकलता हूँ। जिस देश और समाज में रहें वहाँ की लोकाभिरुचियों का ध्यान रखना भी सभ्य होने की निशानी होती है और मैं अपने को इसका हक़दार मानता रहा हूँ।

विश्वविद्यालयी शिक्षा में लड़कियों की संख्या लड़कों की अपेक्षा बहुत अधिक देखकर यही लगता है कि इक्कीसवीं सदी नारियों की होगी। इसका असर अभी से सरकारी सेवा आदि में नई पीढ़ी के अधिकारियों-कर्मचारियों में बढ़ती स्त्री-

विश्वविद्यालय परिसर में ही नहीं बाहर भी न धर्म का झंझट और न जातियों की अनावश्यक मुहांमुहीं। जातियों के नाम पर स्त्री और पुरुष नाम की दो ही जातियाँ सर्वत्र दिखती हैं। इस तरह यहाँ की पूरी सामाजिक संरचना ही प्राकृतिक कही जा सकती है।

संख्या से दिख रहा है। अपने संख्या बल के कारण बिंदास लड़कियों की टोलियों का विचरण करना इनके निर्भय और निर्बाध विकास की ओर संकेत करता है। यह दुनिया भर के लिए एक सुखद संयोग होगा जब सारे भूमंडल पर स्त्री जाति निर्भय होगी।

परिसर में हिरनियों-से उछलते-कूदते, मचलते, घूमते हुए छात्राओं के दलों को देख कर 'गर्भनाल' के नवम्बर-२०१३ अंक में पढ़ा श्रीमती सुधा दीक्षित का नारी विषयक धारदार लेख स्मरण हो आया कि नारी अब और आगे घूँघट और किसी भी तरह के परदे को सहने वाली नहीं है। उनके ही लेख में उल्लिखित यह शेर समूची स्त्री जाति की सामाजिक और राजनीतिक चेतना का घोषणा पत्र कहा जा सकता है :

हम ऐसी सब किताबें काबिले ज़ब्ती समझते हैं

कि जिनको पढ़ के मर्द औरत को खब्ती समझते हैं

इन दलों को देखकर यह विश्वास जगता है कि कोई भी ताकत इन्हें जाति, धर्म या संप्रदाय में नहीं बाँट सकती। विश्वविद्यालय परिसर में ही नहीं बाहर भी न धर्म का झंझट और न जातियों की अनावश्यक मुहांमुहीं। जातियों के नाम पर स्त्री और पुरुष नाम की दो ही जातियाँ सर्वत्र दिखती हैं। इस तरह यहाँ की पूरी सामाजिक संरचना ही प्राकृतिक कही जा सकती है। पूरे बीस दिनों से घूमते हुए इस शहर में केवल एक महिला को उसके चेहरे के ढँकाव से इस्लाम से जोड़ पाया। यह जोड़-गाँठ करते समय मैंने अपने को कोसा कि इस भेदरहित समाज में भी भेद करके देखने की मेरी प्रवृत्ति क्यों नहीं गई। इसके अलावा यहाँ न कोई पूजास्थल या कोई ऐसा व्यक्ति दिखा जिसके आधार पर हमारी विभेद बुद्धि कुछ भेद कर पाती। सबकी वेशभूषा और खान-पान की एकरूपता इन्हें बाहर और भीतर दोनों तरफ (तन से भी और मन से भी) से परस्पर एकीकृत रखती है।

ग्वांगदांग प्रांत की प्राकृतिक रम्यता और उसके हृदय स्थल ग्वान्जाऊ शहर की मनोज्ञता और वैभवशीलता उसे किसी भी महान देश की राष्ट्रीय राजधानी के लायक बनाते हैं। यहाँ की सत्तर से अस्सी मंज़िली सचमुच की आलीशान इमारतें देख कर लगता है कि जैसे ये बड़े गर्व से सीना ताने ऊपर वाले को चुनौती दे रही हों कि क्या तुम्हारे स्वर्ग में है कोई हमसे खूबसूरत।

श्रम और तकनीक की ये जीवंत मिसालें हमें नसीहत-सी भी देती हुई दिखती हैं कि नाना संतों-असंतों और भगवानों के फेर में जाया किए जा रहे दिन, मास और दशकों के लंबे समय को यदि राष्ट्र के विकास में लगाया जाए तो अपने आप कल्याण हो जाएगा।

बिना नाना पूजाघरों, घंटों, घड़ियालों, आरतियों और अजानों के देखे-सुने हुए यहाँ समय बिताते हुए कुछ भी अभाव नहीं लगता बल्कि ऐसा सुखद अहसास होता है कि जैसे हम सिर्फ़ और सिर्फ़ इंसानी जज़्बातों की इबादत के शहर में रह रहे हैं।■

डॉ. कुसुम नैपसिक

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय नई दिल्ली से हिंदी साहित्य में एम.ए., एम.फिल. और पीएच.डी.। हिंदी पत्रकारिता में पोस्ट ग्रेजुएशन। भारत और अमरीका में हिंदी अध्यापन। फुलब्राइट सहायक शिक्षिका के रूप में ऑस्टिन विश्वविद्यालय, टेक्सास में पढ़ा और पढ़ाया है। स्टारटॉक हिंदी अध्यापन कार्यक्रम में प्रशिक्षित, गर्मी की छुट्टियों में कालोराडो में हाईस्कूल के बच्चों को हिंदी पढ़ाती हैं। सम्प्रति - यूनिवर्सिटी ऑफ कोलोराडो में हिंदी लेक्चरर।

संपर्क : kusumknapczyk@gmail.com

तथ्य

परंपरागत भोजन और थैंक्सगिविंग

क्या अमेरिका में दाल-चावल भी मिलता है? यह सवाल मुझसे मेरी गाँव में रहने वाली जिज्ञासु ताई ने किया था। सवाल बहुत सीधा-साधा था लेकिन तब लगा शायद सभी के दिल में यह प्रश्न ज़रूर उठता है कि भला विदेशों में रहने वाले लोग क्या खाते हैं। क्योंकि ऐसा ही सवाल मुझसे अमेरिका में रहने वाले कई लोग, भारतीय खाने के बारे में कर चुके हैं और मैं उनको समझा-समझा के थक गई कि भारत में सिर्फ नान, दालमक्खनी और साग-पनीर ही नहीं मिलता इसके अलावा भी ढेरों व्यंजन होते हैं जिसका लुफ्त सिर्फ भारत जाकर ही लिया जा सकता है। कुछ भी हो किसी भी देश की जीवन-शैली उसके खान-पान से ही झलकती है।

अमेरिका का खाना मुझे शुरू में समझ नहीं आया। यहाँ इतनी सारी संस्कृति और देशों के लोग रहते हैं कि पता ही नहीं चलता कि आख़िर अमेरिका का अपना परंपरागत खाना है क्या? मैं अमेरिका में जब नई-नई आई थी तब मेरे बहुत कम अमेरिकन दोस्त थे। वे लोग अक्सर लंच में पीनट-बटर और जेली का सैंडविच और सेब खाते थे लेकिन मुझे उनके खाने के बारे में इससे अधिक जानकारी नहीं थी। धीरे-धीरे मुझे पता चला कि अमेरिकन घरों में ज़्यादातर लोग खाना छह बजे तक खा लेते हैं और शाम का खाना ही उनका दिन-भर का मुख्य खाना होता है। तब मुझे अपने गाँव की याद आई क्योंकि वहाँ भी लोग शाम को सूरज ढलने से पहले ही खाना खा लेते हैं और सबेरे जल्दी उठते हैं।

अमेरिकन रेस्टोरेंट्स में तो सब तरह का खाना मिलता है जैसे भारतीय, थाई, जापानी, मेक्सिकन, कोरियन, इटालियन आदि। तब मुझे लगता था कि शायद पिज़्ज़ा और बर्गर ही अमेरिका का असली खाना है। तभी मुझे मेरी एक अमेरिकन दोस्त ने अपने घर 'थैंक्सगिविंग' की दावत दी। दिमाग़ में बड़ी उलझन थी कि जाऊं या नहीं। फिर मैंने सोचा यही अच्छा मौका है अमेरिका के बारे में अपनी जिज्ञासा शांत करने का। मैंने उनके घर जाने का निर्णय लिया। उनका घर बहुत दूर, दूसरे शहर में था जब मैं अपनी दोस्त के घर जा रही थी तो मैंने देखा मौसम बहुत सुहावना था। न सर्दी और न गर्मी। चारों ओर नारंगी और चॉकलेटी पत्तियाँ बिखरी हुई थीं। शायद यही पतझड़ का मौसम था बहुत सुन्दर और मनमोहक। कुछ लोग घरों के बाहर पत्तों को बुहार रहे थे और छोटे-छोटे बच्चे उन पत्तों से खेलते हुए दिखे। वे उन पत्तों में अपने आपको छुपा लेते थे।

जब मैं उसके घर पहुँची तो वहाँ का माहौल सच में एक त्यौहार वाला था। सभी लोग किचन में काम कर रहे थे। कोई आलू छील रहा था। कोई आटा गूंथ रहा था तो कोई चूल्हे पर कुछ पका रहा था। कोई अवन में टर्की बना रहा था। सभी लोग बातें कर रहे थे और बहुत खुश नज़र आ रहे थे। सभी लोगों ने मेरा खुले दिल से स्वागत किया और उनके त्यौहार में शामिल होने के लिए मेरा धन्यवाद भी किया। मैंने महसूस किया कि इतना सब कुछ पक रहा था किचन में, लेकिन ख़ुशबू नदारद है। अमेरिका के किचन से खाना बनाते हुए ख़ुशबू का न आना मेरे लिए बिलकुल नई बात थी। भारत में खाने का रिश्ता शायद उसकी सुगंध से ज्यादा है जो खानेवाले को अपनी ओर बरबस खींच लेता है। और एक बात यहाँ के घरों से कोई ख़ुशबू भी नहीं आती जैसे भारत के घरों में घुसते ही

अमेरिका में लोग विभिन्न देशों का खाना भी बहुत चाव से खाते हैं और साल भर अपने स्वाद को बदलते रहते हैं। आख़िर क्यों न हो जिस देश में वर्षों से इतनी संस्कृतियाँ घुल-मिल कर रहती हों और जिसे 'मेल्टिंग पॉट' के नाम से नवाज़ा गया हो वहाँ ऐसा होना लाज़मी है।

आती है जिसे हम कोसों दूर होते हुए भी महसूस कर सकते हैं। हर घर की अपनी एक अनोखी महक, क्या पता वह कहाँ से आती है और हमेशा के लिए वहाँ बस जाती है।

ख़ैर जब खाना मेज़ पर सजाया गया तो मेरे लिए उसमें से कुछ भी जाना-पहचाना नहीं था। मैं चिकन के सिवा और किसी तरह का मांस नहीं खाती थी। जब मैंने चिकन जैसा ही कुछ देखा तो मैं सोचने लगी यह है तो चिकन जैसा, लेकिन आकार में इतना बड़ा क्यों है? मैंने पूछ ही लिया कि यह क्या है। जवाब मिला यह एक तरह का पक्षी है जो 'थैंक्सगिविंग' के दिन ज़रूर बनाया जाता है। सुनकर मैं रुक गई। मेरे ज़हन में वे सारे पक्षी आने लगे जिनको मैं अक्सर दाने डाला करती थी। मैं उसे नहीं खा सकी। क्रैनबेरी की चटनी और सावरक्राफ्ट कुछ ज्यादा ही खट्टे थे। मुँह में डालते ही चेहरे का नक्शा बिगड़ गया। मैं वहाँ अगर कुछ खा सकी तो वह था शकरकंदी और ब्रेडरोल्स। उनका सेब का जूस भी मज़ेदार था। इसके बाद मीठे में बहुत सारी चीज़ें थी जैसे कद्दू और पिकान पाई और चॉकलेट केक। पाई मेरे लिए नई चीज़ थी जो मुझे कुछ ख़ास पसंद नहीं आई लेकिन चॉकलेट केक बहुत अच्छा था। जो भी था मुझे खाने से ज्यादा वहाँ लोगों से मिलना पसंद आया। वे सभी लोग बहुत मृदुभाषी और सरल लगे।

अमेरिका का यह त्यौहार मेरे लिए बहुत दिलचस्प था, 'थैंक्सगिविंग' यानि शुक्रिया अदा करने का त्यौहार। इस त्यौहार में परिवार के लोग और रिश्तेदार जो काफ़ी दिनों से एक-दूसरे से नहीं मिल सके थे, मिल जाते हैं और मज़ेदार बात यह है कि यह हर साल अक्टूबर के चौथे हफ्ते के गुरुवार को ही मनाया जाता है। स्कूलों और कॉलेजों में इस दिन के बाद सप्ताह के अंत तक छुट्टी होती है जिससे लोग अपने दूर बसे परिवारवालों से मिलने जा सकें।

'थैंक्सगिविंग' में लोगों को एक मौका मिलता है उन सब चीज़ों के लिए शुक्रिया अदा करने का जो उन्हें कुदरती तौर पर मिली हैं जैसे परिवार, नाते-रिश्तेदार, भोजन, घर इत्यादि। मज़े की बात है कि इस दिन किसी प्रकार के उपहार का लेन-देन नहीं होता, बस परिवारवालों की उपस्थिति और उनका प्रेम ही काफ़ी होता है। यह राष्ट्रीय त्यौहार अमेरिका और कनाडा में मुख्य रूप से मनाया जाता है। इस त्यौहार में देश की ऐतिहासिक, धार्मिक और सांस्कृतिक जड़ें साफ़ दिखाई देती हैं। वैसे 'थैंक्सगिविंग' मनाने को लेकर कई कहानियाँ प्रचलित हैं जैसे यह इसलिए मनाया जाता है कि सालभर भरपूर फ़सल के लिए शुक्रगुज़ार हुआ जाए। लेकिन मुख्य कहानी जो मुझे थैंक्सगिविंग के दिन बताई गई थी, वह यह है कि पहली बार यह मेसाचुसेटस में १६२१ ई. में मनाया गया था जब इंग्लैंड से सौ के करीब लोग जो अलगाववादी चर्च से सम्बंधित थे, वे मेफलावर नामक एक जहाज़ से अमेरिका में पहली बार आए। हालांकि काफ़ी लोगों की मृत्यु भीषण सर्दी के कारण रास्ते में ही हो गई थी। अमेरिका के मूल निवासियों ने उनका स्वागत किया और उनके साथ शांति समझौतों के बाद एक बहुत बड़े भोजन का आयोजन किया जिसमें सभी ने अपने जीवन और भोजन के लिए शुक्रिया अदा किया। इस भोज में अमेरिका के मूल निवासियों का भोजन शामिल था जिसमें भुना टर्की (एक प्रकार का पक्षी जो आकार में बहुत बड़ा होता है और ज्यादा ऊँचाई तक नहीं उड़ सकता), क्रैनबेरी की चटनी, शकरकंदी, आलू, सावरक्राफ्ट जो बंदगोभी का एक अचार है मुख्य था।

इस तरह अमेरिका के मूल निवासियों ने अपने इंग्लैंड के अतिथियों को यहाँ का खाना बनाना सिखाया और फसल उगाने की जानकारी दी। इसी तरह का कबिलाई खाना आज तक 'थैंक्सगिविंग' की परंपरा में खाया और बनाया जाता है। यह ग़लत नहीं होगा अगर कहा जाए कि यही अमेरिका का मूल और परंपरागत खाना है लेकिन आमतौर पर अमेरिका में लोग विभिन्न देशों का खाना भी बहुत चाव से खाते हैं और साल भर अपने स्वाद को बदलते रहते हैं। आख़िर क्यों न हो जिस देश में वर्षों से इतनी संस्कृतियाँ घुल-मिल कर रहती हों और जिसे 'मेल्टिंग पॉट' के नाम से नवाज़ा गया हो वहाँ ऐसा होना लाज़मी है।■

रमेश जोशी

१८ अगस्त १९४२ को चिड़ावा, राजस्थान में जन्म। राजस्थान विश्वविद्यालय से एम.ए. और रीजनल कालेज ऑफ एज्यूकेशन भोपाल से बी.एड., पोरबंदर से पोर्ट ब्लेयर तक घुमक्कड़ी, प्राथमिक शिक्षण से प्राध्यापकी करते हुए केन्द्रीय विद्यालय जयपुर से सेवानिवृत्त। संप्रति : अमरीका में अंतर्राष्ट्रीय हिंदी समिति की त्रैमासिक पत्रिका 'विश्वा' के प्रधान संपादक। मूलतः व्यंग्यकार, गद्य-पद्य की ६ पुस्तकें प्रकाशित। ब्लॉग - jhoothasach.blogspot.com

संपर्क : 4758, darby court stow, OH-44224 USA Email : joshikavirai@gmail.com Tel. : 330-688-4927

जन्नत की हकीकत

होने और दिखने के बीच

वर्ष २०१२ में संयुक्त राज्य अमरीका में जबरदस्त सूखा पड़ा। संभवतः पिछले तीस वर्षों में पहली बार। इतनी कम वर्षा हुई, जिन स्थानों पर कृषि योग्य वर्षा होती है वहाँ तो बिना सिंचाई के खेती होती है शेष में सिंचाई की आवश्यकतानुसार व्यवस्था है फिर भी वर्षा तो वर्षा ही है। तभी तो राजस्थान में कहा जाता है- *मेऊ तो बरस्या भला, होणी हो सो होय अर्थात कुछ भी हो वर्षा तो होती ही अच्छी।*

कहा जाता है कि इस वर्ष कुछ अप्रत्याशित हुआ कि कोई ११ राज्यों में औसत से इतनी कम वर्षा हुई कि खेती विशेषकर मक्का की ७१ प्र.श. और सोयाबीन की ५६ प्र.श. फसल पर बहुत दुष्प्रभाव पड़ा। ये दोनों फसलें कई तरह से महत्त्वपूर्ण हैं, वैसे अन्य सभी संसाधनों की तरह अमरीका के पास जल की भी कोई कमी नहीं है। संयुक्त राज्य अमरीका और कनाडा के बीच सीमा बनाती हुई पाँच झीलें हैं जिन्हें 'ग्रेट लेक्स' कहा जाता है। इन पाँचों झीलों में सारी दुनिया का कोई २१ प्र.श. मीठा धरातलीय पानी है। पानी भी इतना कि इन झीलों के कोई तीन-चार सौ किलोमीटर की दूरी के इलाकों में भूजल का स्तर इतना ऊँचा है कि दस-बारह फुट पर पानी निकल आता है। वर्षा के समय यदि बेसमेंट में पानी निकालने की स्वचालित मोटर की व्यवस्था न हो तो बेसमेंट में पानी भर जाता है। इसके अलावा यहाँ बहुत सी नदियाँ हैं और सभी बारहमासी नदियाँ हैं। फिर भी प्रकृति तो प्रकृति है। कोई भी तथाकथित महाशक्ति उसका क्या खाकर मुकाबला करेगी?

इन्हीं संसाधनों और अपनी समृद्धि के गुमान में आकर यहाँ के मध्यवर्ग ने भी कई ऐसे शौक और धारणाएँ पाल ली हैं जिनका कोई व्यावहारिक और तार्किक आधार नहीं है जैसे कि घरों के चारों तरफ कोई हज़ार पाँच सौ वर्ग गज में ऐसी घास लगा रखी है जिसकी कोई उपयोगिता नहीं है। हरियाली और वनस्पति से मिलने वाली शांति, शुद्ध वायु और आर्थिक लाभ संभवतः बड़े फलदार पेड़ों से अधिक मिल सकते हैं, लेकिन वे फैशन में नहीं हैं। फुर्सत का हाल यह है कि सारा समय कार से कार्यालय में पहुँचने, नौकरी और घास की कटिंग आदि में निकल जाता है। कभी सुकून से उस घास पर बैठने का समय भी नहीं मिलता। बस, वह एक फैशन है।

इस बार बारिश कम हुई जिससे फसलों को बहुत नुकसान हुआ, फसलों या वनस्पति के नुकसान से ये लोग इतने प्रभावित नहीं हुए जितने लान के खराब होने से क्योंकि इससे घर का सौंदर्य कम हो गया और सौंदर्य कम होने से घर के ठीक कीमत में बिकने में बाधा आती है। १६ जुलाई २०१२ की घटना है कि इंडियाना प्रान्त के निवासी टिम बर्डवेल नामक व्यक्ति के घर के आगे की घास भी वर्षा के अभाव में खराब हो गई। टिम का टर्फ पेंट करने का धंधा है। टर्फ मतलब कि खेल के नकली घास के मैदान, जिन्हें हरा दिखाने के लिए पानी और खाद नहीं बल्कि एक विशेष प्रकार का पेंट किया जाता है। टिम ने अपने लान की घास को खूबसूरत बनाने के लिए उस पर भी टर्फ पर किया जाने वाला पेंट स्प्रे

खाने का आनंद केवल खाने में नहीं बल्कि 'उस उत्सव' के आयोजन में है, आनंद मंजिल में नहीं उसकी आशा में चलते जाने में है, संयोग के क्षण तो कुछ ही होते हैं, मगर उनका सच्चा आनंद तो उसकी प्रतीक्षा में है।

कर दिया। अब तो धंधा चल निकला। आज 'ग्रास इज ग्रीन' जैसी कई ऐसी साइटें हैं जो लॉन पेंट करने के ठेके लेती हैं। कोई दो हजार वर्ग फीट के लॉन को पेंट करने में करीब १२५ डालर का खर्चा आता है।

यह है बाज़ार जो हर काम के लिए तैयार है और आपको एक नकली और काल्पनिक ही सही झाँसा देता है। गंजे को घने बालों का, काले को गोरे होने का, गोरे को अपनी चमड़ी कुछ गेहुआँ बनाने के लिए टेनिंग का, मोटे को पतला, पतले को मोटा बनाने का, प्लास्टिक सर्जरी से मनचाही शक्ल पाने का, छोटे वक्ष को बड़ा बनाने का भले ही उसमें कोई अप्राकृतिक पदार्थ ही भरना पड़े। विग लगाकर अपना गंजापन छिपाने का, जूते की एड़ी मोटी करके ऊँचाई बढ़ाने का भ्रम पैदा करने का। मतलब कि जो है उससे सुखी नहीं होना और जो बाज़ार देगा उससे खुशी की कोई गारंटी नहीं। आदमी को जबरदस्ती खुद में कमियाँ ढूँढ़ने के लिए उकसाना और फिर उनका इलाज़ बेचना। औरत को उनके उत्पाद न खरीदने पर पति के किसी और की तरफ आकर्षित हो जाने और पति को पत्नी के किसी और की तरफ आकर्षित हो जाने का डर दिखाकर सामान बेचना एक बहुत सामान्य तरीका है। कोई भी पुरुष उनके उत्पाद खरीद कर भीम नहीं हुआ और न कोई औरत उर्वशी। हाँ, व्यापारी ज़रूर मालामाल हो गए।

हर नकली दाँत या विग लगाया हुआ व्यक्ति जानता है वह गंजा या दंतहीन है। और लोगों से भी कुछ छुपा नहीं रहता। साठ साल के बूढ़े के घने काले बाल देखकर सब समझ जाएँगे कि मामला क्या है? फिर लाभ क्या हुआ? पैसे खर्च करके भी शान्ति नहीं। वह तो तभी मिलेगी जब हम सत्य को स्वीकार करेंगे। मानवेतर जगत में ऐसी कुंठाएँ नहीं हैं। चूहा हाथी को देखकर अपने चूहे होने से दुःखी नहीं है। और अपने चूहे के जीवन को भरपूर जीता है। कुछ बालों के सफ़ेद हो जाने से आदमी परेशान हो जाता है जबकि कई रंगों के बाल होने पर भी कोई पशु-पक्षी न तो बुरा लगता है और न दुःखी होता है। इसलिए सुधार सोच में ज़रूरी है। बाल रँगने से जवानी नहीं आती और न ही लान रँगने से पर्यावरण सुधरता है और न ही हरी घास का आनंद मिलता है बल्कि यदि कोई सोचे तो एक मूर्खता की अनुभूति ही होती है।

जब तक झूठे प्रदर्शन से मुक्त नहीं होंगें तब तक कुंठाहीनता, बेहतरी और शांति का रास्ता नहीं खुलेगा। 'होने' को स्वीकार करने से ही कुछ बेहतर बनने का रास्ता दिखेगा और अध्यवसाय का मन बनेगा। केवल 'दिखना' तो एक मरीचिका है निरर्थक और थक-थकाकर अंत में पछतावा देने वाला उपक्रम। शायद इसीलिए दर्पण का आविष्कार किया गया है लेकिन दर्पण की बात कोई माने तो? कोई मानना भी चाहे तो बाज़ार मानने नहीं देता। उसकी चीजें न खरीदने पर पिछड़ने और जीवन व्यर्थ होने डर दिखाता है और हम अपने कमज़ोर मन के कारण उसके बहकावे में आ जाते हैं।

बाज़ार की सफलता आदमी को डराने में है और आदमी की सफलता और सुरक्षा बाज़ार से न डरने और अपने विवेक को जागृत रखने में है।

खैर, एक सोरठिया दूहा सुनिए और हो सके तो विचार कीजिए :

काले रँगकर बाल, किसको धोखा दे रहे
घरवाली और काल, दोनों जानें दोस्तो।

तभी तुलसी कहते हैं-

सकल पदारथ हैं जग माहीं, करम हीन नर पावत नाहीं।

चाहे जितनी समृद्धि हो जाए, चाहे जितने मौज-शौक कर लें लेकिन 'पदार्थ' (तत्त्व) - सच्चे आनंद की प्राप्ति तो कर्म करने पर ही होगी और वह कर्म है अपने हाथ से कोई न कोई सार्थक श्रम करना। श्रम से कुछ सृजन करने वाले परंपरागत बढ़ई, दर्जी, मोची आदि को तनाव कम होता है, वे साहसी और दृढ़ निश्चयी होते हैं और हृदयाघात जैसी समस्याओं से बचे रहते हैं - यह हमारा नहीं, ब्रिटेन के शोधकर्त्ताओं का निष्कर्ष है। खाने का आनंद केवल खाने में नहीं बल्कि 'उस उत्सव' के आयोजन में है, आनंद मंजिल में नहीं उसकी आशा में चलते जाने में है, संयोग के क्षण तो कुछ ही होते हैं, मगर उनका सच्चा आनंद तो उसकी प्रतीक्षा में है। आपको शायद 'सौदागर' फिल्म का वह गीत भलीभाँति याद होगा- *'सजना है मुझे सजना के लिए।'*

सजना को पैसे से प्राप्त करने की वस्तु न समझें उसके लिए सजने का उपक्रम करें तब जानेंगे 'उस आनंद' को लेकिन क्या तब आप 'गूँगे के उस गुड़' का वर्णन कर पाएँगे?

और जहाँ तक उस लॉन पेंट करने वाले प्रसंग की बात है तो हम यही कहना चाहेंगे-

मन ना रँगाए, रँगाए जोगी कपड़ा। ■

सुधा दीक्षित

मथुरा में जन्म। अंग्रेजी साहित्य में एम.ए.। लखनऊ विश्वविद्यालय से स्नातकोत्तर एवं बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय से एल.एल.बी. की उपाधि प्राप्त की। कविता एवं सृजनात्मक लेखन में विशेष रुचि। सम्प्रति - बंगलुरू में रहती हैं।

सम्पर्क : sudha_dixit@yahoo.co.in

रम्य-रचना

सुबह की नींद और स्वास्थ्य

बुज़ुर्गों ने कहा है सुबह सवेरे उठना आरोग्यवर्धक, धनवर्धक तथा बुद्धिवर्धक होता है। किन्तु बुजुर्गों ने कहा है तो सच ही होगा, क्योंकि अगले ज़माने के हैं ये लोग, इन्हें कुछ न कहो। अंगरेज़ों ने भी तो इसी बात की ताक़ीद की है- Early to bed and early to rise makes a man healthy, wealthy & wise.'

अब तो मानना ही पड़ेगा। पता है हमारे देश में योग-साधना तब तक लोकप्रिय नहीं हुई जब तक अंगरेज़ों ने उसे (yoga) कह कर नहीं सराहा। इसलिए मान तो लिया लेकिन बिना परखे हम कोई बात मान लें, ऐसी अपनी फितरत नहीं। सोचा पहले अनुभवी लोगों से पूछताछ कर लें फिर निश्चय करेंगे कि क्या किया जाये। आखिर सुबह की शीतल-मंद-सुगंध समीर में सोने के असीम आनंद को आसानी से कैसे छोड़ दें। इसीलिए निकल पड़े शोध पर।

सबसे पहले पड़ोस की एक स्वस्थ महिला से पूछा कि क्या वह प्रातः भ्रमण को जाती हैं। उनका मुखमंडल मुरझा गया। आह भर कर बोलीं- शुरू तो किया था पर छोड़ दिया। हमने पूछा- क्यों क्या वज़न कम नहीं हुआ? वे बोलीं- हुआ, पांच तोले कम हो गया। हमारा किंकर्तव्यविमूढ़ चेहरा देखकर उन्होंने समझाया कि एक सुहावनी सुबह किसी ने उनकी सोने की ज़ंजीर गले से खींच ली (पांच तोले की)। बस तभी से सुबह घूमना बंद।

हमें अंगरेज़ी की एक और कहावत याद आ गयी- Early bird gets the worm. अब कोई बेचारे [illegible] से पूछे की सुबह उठना उसके स्वास्थ्य के लिए कैसा रहा? हाँ early bird (ज़ंजीर खींचने वाला चोर) अवश्य ब्रह्ममुहूर्त में उठने के कारण धनवान हो गया और बेचारी महिला कीड़ा बनकर पुनः अपने बिल में, मेरा मतलब है कि अपने घर में दुबक गयी।

यानि यह सारा मामला दृष्टिकोण का है। एक और सेम्पल देखते हैं। अगले दिन हमने अपने पड़ोसी सज्जन से वही सवाल किया- सुबह घूमना क्या सचमुच सेहत के लिए लाभदायक है? (उन्हें ज़ंजीर खिंचने का डर नहीं था) उन महोदय ने कानों को हाथ लगाया। बोले- अरे बहनजी वर्माजी का अपहरण इस प्रातः भ्रमण के चक्कर में ही ही हुआ था। लाखों देकर जान बची। मैंने कहा- सही बात है। वर्मा साहब तो न स्वस्थ बने न धनवान रहे। हाँ अपहरणकर्ता अवश्य स्वस्थ, धनी और बुद्धिमान साबित हो गए। बात फिर वहीं दृष्टिकोण पर आ गयी।

हमने निश्चय किया कि हम स्वयं सुबह उठ कर देखेंगे (बिना घर से बाहर निकले) कि सच क्या है। सत्य की खोज में व्यक्ति क्या-क्या नहीं करता। हम भी उलूक श्रेणी को त्यागकर कलरव करते पक्षियों में शामिल हो गए। सुबह-सुबह उठकर घर के बागीचे में योग करने निकल पड़े। इससे पहले कि हम ठंडी ताज़ी हवा में लम्बी साँस भी ले पाते, पतिदेव की आवाज़ सुनाई दी- अरे तुम उठ गयीं! आश्चर्य! चलो देर आये दुरुस्त आये। ज़रा बाहर से अख़बार उठा लाना। पेपर उठा कर उन्हें थमाया तो बोले- भई एक कप चाय बना दो। योग को दस मिनट के लिए स्थगित करके हमने चाय बना कर उन्हें थमायी। वे बोले- क्या अपनी चाय नहीं बनाई? खैर कोई बात नहीं, अपनी चाय के साथ ज़रा बढ़िया-सा नाश्ता भी

उल्लू एक बेहद बुद्धिमान प्राणी है, इसीलिए वह लक्ष्मी का वाहन भी है। रात को उल्लू की तरह जागने वाला व्यक्ति न केवल बुद्धिमान होता है बल्कि धन की बचत भी करता है। नहीं समझे? अरे भई रात में शॉपिंग कौन करता है?

बना लाना। वह भी किया। तब तक सूरज सर पर चढ़ आया।

अगले दिन थोड़ा और जल्दी उठे कि कम से कम सूर्योदय तो देख लें। पर सूर्योदय देखने के लिए घर से बाहर निकलना पड़ता है ना? पतिदेव तैयार बैठे थे- भई सुबह की चाय तो तुम्हारे हाथ की ही अच्छी लगती है। ऑफिस जाने को तैयार होती बिटिया बोली- अरे वाह मम्मी उठ गयी! प्लीज़ माँ मेरी ड्रेस प्रेस कर दो। बेटा बोला- मम्मी मुझे देर हो रही है, जरा गेट खोल दो। यानि कार निकल जाने के बाद गेट बंद भी कर देना। फिर वही ढाक के तीन पात। योग भी स्थगित और प्रातःकालीन शीतल-मंद-सुगंध समीर भी ग़ायब। सोचा, छोड़ो आज किसी पत्रिका के लिए कोई रचना ही लिख लेते, लेकिन कहाँ! बच्चे तो बच्चे, बाप रे बाप वाले अंदाज़ में गृहस्वामी बोले- भई आज तुम जल्दी उठ गई हो तो मेरे कुछ पेंडिंग काम कर दो। और हाँ...?

एक सप्ताह की कशमकश के बाद हमने सत्य की जो खोज की उसका सार कुछ इस प्रकार है :

यदि आप लेखक या चित्रकार या कुछ भी नहीं सिर्फ किताबी कीड़ा हैं तो आपको एकांत तथा शांत वातावरण की आवश्यकता होती है। यह एकांत और शांति आपको कम से कम सुबह तो नहीं मिल सकती। सुबह की ताज़गी रचनात्मक कार्य करने की प्रेरणा देती है यह केवल भ्रम है (या दृष्टिकोण का मामला है -याद कीजिये worm)। मनचाहा एकांत और दुर्लभ शांति केवल रात में ही उपलब्ध होती है। पूरे चाँद की उजियारी रात हो या तारों भरी सियाह रात, रचनात्मक प्रेरणा तभी मिलती है जब बाकी दुनिया सो रही हो और बिलकुल न ज़िन्दगी में हमारी खलल पड़े।

दूसरा सत्य यह सामने आया कि उल्लू एक बेहद बुद्धिमान प्राणी है, इसीलिए वह लक्ष्मी का वाहन भी है। रात को उल्लू की तरह जागने वाला व्यक्ति न केवल बुद्धिमान होता है बल्कि धन की बचत भी करता है। नहीं समझे? अरे भई रात में शॉपिंग कौन करता है? तो साहब हमारे नज़रिए से सुबह सवेरे उठाना सेहत के लिए अत्यंत हानिकारक है। इसलिए :

किस-किस को याद कीजिये किस- किस को रोइये
आराम बड़ी चीज़ है मुँह ढँक के सोइये। ■

Who Are You Calling Old?

Proud2B60 :

is a special campaign by Help Age India.

Millions of people are living their later years with unprecedented good health, energy and expectations for longevity.

Suddenly, traditional phrases like "old" or "retired" seem outdated. Help Age's "Who Are You Calling Old?" campaign presents the many faces of this New Age.

New language, imagery, and stories are needed to help older people and the general public re-envision the role and value of elders and the meaning and purpose of one's later years. This campaign is about leading this change. It is about combating the negative image of the frail, dependent elder.

General Query

http://www.helpageindia.org

गर्भनाल द्वारा जनहित में जारी

प्रभु जोशी

१२ दिसंबर, १९५० देवास के गाँव पीपलरावां में जन्म। जीवविज्ञान में स्नातक तथा रसायन विज्ञान में स्नातकोत्तर के उपरांत अंग्रेज़ी साहित्य में भी प्रथम श्रेणी में एम.ए., अंग्रेज़ी की कविता स्ट्रक्चरल ग्रामर पर विशेष अध्ययन। पहली कहानी १९७३ में धर्मयुग में प्रकाशित। 'किस हाथ से' लंबी कहानियाँ तथा 'उत्तम पुरुष' कथा संग्रह प्रकाशित। हिंदी दैनिक नईदुनिया के संपादकीय तथा फ़ीचर पृष्ठों का पाँच वर्ष तक संपादन। बचपन से चित्रकारी करते हैं एवं जलरंग में विशेष रुचि। मध्यप्रदेश साहित्य परिषद का कथा-कहानी के लिए अखिल भारतीय सम्मान। साहित्य के लिए गजानन माधव मुक्तिबोध फेलोशिप। संप्रतिः स्वतंत्र लेखन एवं पेंटिंग।

संपर्क : ४, संवाद नगर, इन्दौर। मोबाइल : ०९४२५३-४६३५६ ईमेल : prabhu.joshi@gmail.com

समलैंगिकता के पक्ष का गणित

पिछले कुछेक वर्षों से भारत में भी अमेरिकी तर्ज पर समलैंगिकों के अधिकारों को लेकर, बुद्धिजीवियों की एक खास बिरादरी संगठित होकर, समवेत-स्वर में लगातार माँग करती आ रही है कि भारतीय न्याय ग्रंथों से भी उस कानून को अविलंब हटा दिया जाए, जो 'समलैंगिकता को 'अप्राकृतिक-मैथुन' मानकर, उसे अपराध की श्रेणी में रखता चला आ रहा है। वे इस कानून को 'राज्य' द्वारा मानवता के विरुद्ध किया जा रहा एक जघन्य अपराध मानते हैं। अतः इसका निरस्त किया जाना जरूरी है।

इस माँग के औचित्य पर विचार करने के पहले, हम यहाँ यह भी देख लें कि गत दशकों में अमेरिकी समाज में समलैंगिकता को वैध बनाने के लिए किस तरह की रणनीतिक कवायदें की गईं। यह सब एक सुनिश्चित योजना के अंतर्गत ही हुआ। दरअसल, समलैंगिकता किसी भी व्यक्ति में जन्मना नहीं होती, बल्कि वह बचपन के निर्दोष कालखंड में अज्ञानतावश हो जाने वाली किसी त्रुटि के कारण उसे उसकी आदत का हिस्सा मान लिया जाता है। इस तरह यह 'नादानी में अपना लिए जाने वाली' वैकल्पिक यौनिकता है, जिसे चिकित्सकीय दृष्टि 'प्राकृतिक' या 'नैसर्गिक' नहीं मानती। जब व्यक्ति इसमें फँस जाता है तो

> *समलैंगिकता किसी भी व्यक्ति में जन्मना नहीं होती, बल्कि वह बचपन के निर्दोष कालखंड में अज्ञानतावश हो जाने वाली किसी त्रुटि के कारण उसे उसकी आदत का हिस्सा मान लिया जाता है।*

बुनियादी रूप से उसके लिए यह एक किस्म की यातना ही होती है, जिसमें उसके समक्ष बार-बार अपना यौन सहचर बदलने की विवशता भी जुड़ी होती है। इसके अलावा, इसमें विपरीत सेक्स के साथ किए गए दैहिक आचरण की-सी संतुष्टि भी बरामद नहीं हो पाती।

वैसे, तमाम सर्वेक्षण और इस विषय पर एकाग्र अध्ययन बताते हैं कि कोई भी व्यक्ति स्वेच्छया समलैंगिक नहीं बनता। किशोरवय में पहली यौन-उत्तेजना और आकर्षण विपरीत सेक्स को लेकर ही उपजता है, समलैंगिक के लिए नहीं। न्यूयॉर्क के एलबर्ट आइंस्टाइन कॉलेज ऑफ मेडिसिन के प्रोफेसर डॉ. चार्ल्स सोकाराइड्स की स्पष्टोक्ति है कि यौन-उद्योगों से जुड़े कुछ तेज-तर्रार शातिरों की यह एक धूर्त वैचारिकी है, जो समलैंगिकों को पैथालॉजिकल बताती है। इससे सहमत नहीं हुआ जा सकता। अमेरिकी समाज में समलैंगिकता की समस्या के ख्यात अध्येता डॉ. चार्ल्स अपनी पुस्तक 'होमोसेक्सुअल्टी : फ्रीडम टू फॉर' में अपना सूक्ष्म वैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत करते हुए कहते हैं- 'अमेरिकी समाज में यह तथाकथित समलैंगिक क्रांति'(?) बस यूँ ही हवा में नहीं गूँजने लगी, बल्कि यह कुछ मुट्ठी भर शातिर बौद्धिकों

> 'अमेरिकी समाज में यह तथाकथित समलैंगिक क्रांति'(?) बस यूँ ही हवा में नहीं गूँजने लगी, बल्कि यह कुछ मुट्ठी भर शातिर बौद्धिकों की 'मानववाद' के नाम पर शुरू की गई वकालत का परिणाम था, जिनमें से अधिकांश स्वयं भी समलैंगिक ही थे।

की 'मानववाद' के नाम पर शुरू की गई वकालत का परिणाम था, जिनमें से अधिकांश स्वयं भी समलैंगिक ही थे। ये लोग 'ट्राय एनीथिंग सेक्सुअल' के नाम पर शुरू की गई यौनिक-अराजकता को, नारी स्वातंत्र्य के विरुद्ध दिए जा रहे एक मुँहतोड़ उत्तर की शक्ल में पेश कर रहे थे। पश्चिम में, जब पुरुष की बराबरी की मुहिम के तहत स्त्री 'मर्दाना' बनने के नाम पर, अपने कार्य-व्यवहार और रहन-सहन में भी इतनी अधिक 'पुरुषवत' या 'पौरुषेय' होने लगी कि जिसके चलते उसका समूचा वस्त्र विन्यास भी पुरुषों की तरह होने लगा। नतीजतन, स्त्री की जो 'स्त्रैण-छवि' पुरुषों को यौनिक उत्तेजना देती थी, शनैः-शनैः उसका लोप होने लगा। उसका आकर्षण घट गया। कहना न होगा कि वेशभूषा की भिन्नता के जरिए, किशोरवय में लड़के और लड़की के बीच, जो प्रकट फर्क दिखाई देता था, वह धूमिल हो गया। इस स्थिति ने लड़के और लड़के के बीच यौन-निकटता बढ़ाने में इमदाद की, जिसने अंततः उन्हें 'समलैंगिकता' की ओर हाँक दिया। निश्चय ही इसमें फैशन-व्यवसाय की भी काफी अहम भूमिका थी। फिर इस निकटता में अपने 'समलैंगिक-सहचर' से यौन-संबंध बनाते समय गर्भ रह जाने की महाविपत्ति से भी बचाव हो गया था। इस दोनों में से किसी को भी पिल्स लेने की आवश्यकता नहीं होती थी। तब 'एड्स' का आशीर्वाद भी नहीं था कि किशोरों को कंडोम को जेब में रखने की आज की-सी आजादी उपलब्ध होती। बहरहाल, इस यौन-मैत्री में रिस्क नहीं थी। कक्षा के 'क्लासमेट' को 'सेक्समेट' बनाया जा सकता था।

इसके साथ ही अमेरिकी समाज में एकाएक यौन-पंडितों की एक पूरी पंक्ति आगे आ गई, जिसमें अल्फ्रेड किन्से, फ्रिट्स पर्ल तथा नार्मन ब्राऊन जैसे लोग थे। इन्होंने एक नई स्थापना दी कि यदि ये संबंध 'फीलगुड' हैं, देन डू इट। इसमें भला अप्राकृतिक जैसा क्या है? 'फीलगुड' की वकालत करने वालों में विख्यात मनोवैज्ञानिक और समाजशास्त्री हर्बर्ट मार्क्यूज भी शामिल हो गए, जिनकी पुस्तक 'वन डाइमेंशनल मैन' फ्रॉयड की वैचारिकी से भी अहले दर्जे का सम्मान और ख्याति प्राप्त कर चुकी थी। इन सब लोगों ने संगठित होकर, अपने तर्कों के सहारे समलैंगिकता के साथ जुड़ा, 'अप्राकृतिक-मैथुन' वाला लांछन भी पोंछ दिया।

कहने की जरूरत नहीं कि यह भी एक रोचक दुर्योग ही रहा आया कि समलैंगिकता के इन पैरोकारों में से कुछेक लोगों के साथ समलैंगिक होने की कुख्याति भी जुड़ी थी, जो अभी तक केवल 'ऑफ दि रिकॉर्ड' थी, जिसका दर्जा कानाफूसी तक ही था-ठीक ऐसी ही कानाफूसी तक, जो भारत में हमारे समय के सर्वाधिक प्रतिभाशाली उर्दू शायर फिराक गोरखपुरी के नाम के साथ चलती रही आई है, लेकिन इन लोगों ने अपने कथित बौद्धिक आंदोलन को शक्ति-सम्पन्न बनाने के लिए किया यह कि इन्होंने अभी तक 'कुटैव' समझी जाने वाली अपनी लत को महिमामंडित करते हुए सार्वजनिक कर दिया। कहा, 'हम समलैंगिक हैं और इसको लेकर हममें कोई अपराध-बोध नहीं है। यह हमारी इच्छित-यौन स्वतंत्रता है, क्योंकि यौनांग का अंतिम अभीष्ट आनंद ही होता है और इसमें भी हम आनंद प्राप्त करते हैं।'

बहरहाल, इस समूचे विवाद में रस लेकर, उसे तूल देने के लिए कुछेक प्रथम क्षेणी के प्रकाशकों ने 'मेक द होलवर्ल्ड गे' अर्थात् 'समूचे संसार को समलैंगिक बनाओ' के नारे को घोषणा-पत्र का रूप देकर छाप दिया। डेनिस अल्टमैन की पुस्तक 'होमो-सेक्सुअलाइजेशन ऑफ अमेरिका' भी इसी वक्त आई। अल्टमैन स्वयं भी समलैंगिक थे। उन्होंने १९८२ में कहा- 'समलैंगिक संबंध, अमेरिका में राज्य के सीमा से अधिक हस्तक्षेप के कारण आततायी बन चुकी विवाह-संस्था की नींव हिला डालने वाला, जबर्दस्त 'शार्ट-लिव्हड-सेक्सुअल-एडवेंचर' है। शादी के साथ जुड़ चुकी घरेलू हिंसा वाले कानून के पेंचीदा पचड़ों में पड़ने से बचने का एकमात्र निरापद रास्ता है- स्विंगिंग-सिंगल हो जाना।'

बहरहाल, अब पुराना स्विंगिंग-सिंगल बनाम 'रमण-कुमार', 'अमेरिकन-सिंगल्स' की तरह प्रसिद्ध हो चुका है। यह आकस्मिक नहीं था कि इन तमाम धुरंधरों ने व्याख्याओं का अंबार लगा दिया कि 'समलैंगिकता', निर्मम परंपरागत यौनिक-बंधन से मुक्ति का मार्ग है। 'यह मनुष्य' के स्वभाव का पुनराविष्कार है। उन्होंने कहा- 'समलैंगिक होना ठीक वैसा ही है, जैसे कोई व्यक्ति 'वामहस्त' होता है। लेफ्ट हेंडर।' कुल मिलाकर, समलैंगिकता से जुड़े सामाजिक-सांस्कृतिक संकोच के ध्वंस के लिए तरह-तरह के विचारधारात्मक प्रहार किए जाने लगे। कुछ चर्चित कानूनविदों ने चर्चा में आने के लिए बहस को अपनी ओर से कुछ ज्यादा ही सुलगा दिया। लगे हाथ टेलीविजन चैनलों तथा हॉलीवुड के फिल्म निर्माताओं ने इस पूरे विवाद और विषय को लपक लिया और धड़ाधड़ समलैंगिक व्यक्ति के जीवन को आधार बनाकर, उनके

अधिकारों को वैध-माँग के रूप में प्रस्तुत करना आरंभ कर दिया। मुख्यधारा के नामचीनि प्रकाशकों ने इसे अपने व्यापार का स्वर्ण अवसर मानकर बाजार को 'समलैंगिकता' के पक्ष-विपक्ष पर एकाग्र पुस्तकों से पाट दिया। इस सबसे एक नई बिरादरी बनी, जिसमें एकता का आधार बना, यौनाचरण। यह बिरादरी 'जी-एल-बी-टी' बनाम गे, लेस्बियन, बाइ-सेक्सुअल तथा ट्रांस-ह्यूमन-सेक्सुअल कहलाई।

इस सारे तह-ओ-बाल और गहमा-गहमी को पॉल गुडमैन जैसे शिक्षाविदों ने शिक्षा के क्षेत्र में हाँक दिया और अचानक सेक्स-एजुकेशन की जरूरत और अनिवार्यता के पक्ष में लंबे-लंबे लेख तथा विमर्श होने लगे। संगोष्ठियाँ, कार्यशालाएँ तथा जनचर्चाएँ होने लगीं। अमेरिकी टेलीविजन के लिए यह विषय 'दमदार और दामदार' भी बनने लगा। चैनलों पर जंग छिड़ गई। समाचार कक्षों में प्रीतिकर चख-चख चलने लगी। वही सब छोटे पर्दे पर भी दृश्यमान होने लगा। नैतिकता का प्रश्न उठाने वालों को 'होमो-फोबिया के शिकार कहकर, उनकी आपत्तियों को खारिज किया जाने लगा। उन्होंने कहा कि 'समलैंगिक' ठीक वैसे ही हैं, जैसे कि कोई गोरा होता है, या कोई काला। अतः इन्हें भी सभी किस्म की स्वतंत्रताओं को एंजाय करने का पूरा-पूरा अधिकार है। विद्यालयों में तेरह वर्ष की उम्र फलांग कर आते बच्चे ने अपने मॉम और डैड के सामने गरदन उठाकर घोषणा करना शुरू कर दी 'हे मॉम, आय'म गोइंग इन सपोर्ट ऑफ गे-मूव्हमेण्ट'। यह किशोरवय की दैहिकता से फूटती यौन-उत्तेजना का नया प्रबंधन था। उनका ब्रेनवाशिंग किया जा रहा था। ये युवा होने की ओर बढ़ने वाला वर्ग ही समलैंगिकता की सिद्धांतिकी का राजनीतिक मानचित्र बनाने वाला था। अतः यह वर्ग ही आंदोलन का अभीष्ट था। वे कहने लगे, 'समलैंगिकता आबादी रोकने में एक अचूक भूमिका निभाती है। तभी 'फिलाडेल्फिया' नामक फिल्म आई, जिसमें सुनियोजित मनोवैज्ञानिक युक्तियाँ थीं, जो करुणा का कारोबार करती हुई निर्विघ्न ढंग से ब्रेनवाश करती थीं। मसलन, फिल्मों में हर हत्यारे, गुंडे या बलात्कार करने वाले के जीवन के नैपथ्य में कोई न कोई करुण कथा होती ही है, जो डबडबाती आँख के आँसू से पात्र के अपराध को धो देती है। उदाहरण के लिए भारत का दर्शक कहेगा, 'भैया, जब औरत हाथ तक नहीं धरने देती तो अगला आदमी क्या करेगा या तो हाथ आजमाइश करे या फिर 'लौण्डेबाजी'।

डॉ. चार्ल्स कहते हैं, मैंने चार दशकों के अपने चिकित्सकीय जीवन के अनुभव के दौरान यह पाया कि वे अपनी समलैंगिक जीवन पद्धति से सुखी नहीं हैं। दरअसल, एक चिकित्सक के समक्ष उनकी पीड़ाएँ पारदर्शी हो उठती हैं और वे सचाई के बखान पर उतर आते हैं। वे उस कुचक्र से बाहर आना चाहते हैं। एक हजार में से ९९७ लोग अपनी

> *आज हम भारत की आबादी के एक बहुत बड़े हिस्से को रोटी, कपड़ा, मकान तो छोड़िए शुद्ध पीने योग्य पानी नहीं दे सके हैं। ऐसे में उनकी इन लड़ाइयों को स्थगित करके समलैंगिकता की लड़ाई लड़ना कितना विवेकपूर्ण कहा जा सकता है?*

समलैंगिकता को लेकर दुःखी हैं। बहरहाल, उपचार के पश्चात ऐसे सैकड़ों रोगी हैं, जिन्होंने विवाह रचाए और वे सुंदर और स्वस्थ्य संतानों के पिता हैं। मैंने यह भी पाया कि वस्तुतः समलैंगिक बनने में उनके माता-पिताओं की भूमिका ज्यादा रही है, जिन्होंने किशोरवय में पूर्ण स्वतंत्रता की माँग करने वाले अपने बच्चों के साथ सख्त असहमति प्रकट करने की बजाय उनकी 'स्वतंत्रता का सम्मान' करने का जीवनघाती ढोंग किया। समलैंगिकों में से अधिकांशों ने कहा कि वे झूठी स्वतंत्रता में जी रहे हैं, जबकि यह एक दासत्व ही है। यह वैकल्पिक जीवन पद्धति नहीं, सिर्फ आत्मघात है। समलैंगिकता जन्मना नहीं है। यह मीडिया द्वारा बढ़-चढ़कर बेचे गए झूठ का परिणाम है। गे-जीन थिअरी अमेरिकी समाज तथा दुनिया के साथ सबसे बड़ा छल है।

एक जगह डॉ. चार्ल्स कहते हैं, 'दरअसल हकीकत यह है कि समलैंगिकों के अधिकारों की ऊँची आवाजों में माँग करने वाले मुझे चुप करना चाहते हैं, क्योंकि वे यौन उद्योग की तरफ से तथा उनके हितों की भाषा में बोल रहे हैं। वे मनुष्य के जीवन से उसकी नैसर्गिकता का अपहरण कर रहे हैं। वे मानवता के कल्याण नहीं, अपने लालच में लगे हुए हैं और उसी के लिए लड़ रहे हैं। उन्हें प्रकृति या ईश्वर ने समलैंगिक (गे) नहीं बनाया है, इन्हीं लोगों ने बताया है। सोचिए, तब क्या होगा, जब सहमति से होने वाले सेक्स के लिए उम्र की सीमा चौदह वर्ष निर्धारित कर दी जाएगी। इस माँग से हमारे विद्यालय पशुबाड़े (एनीमल फार्म) में बदल जाएँगे।'

दुर्भाग्यवश हिन्दुस्तान में एड्स तथा सेक्स टॉय के व्यापार के लिए राज्य स्वयं ही समलैंगिक संबंधों को कानून की परिधि से बाहर निकालने का इरादा प्रकट कर रहा है। वह समलैगिकों की 'ऑफिशियल आवाज' बन रहा है, ताकि अरबों डॉलर का यौन उद्योग यहाँ भी अपनी जड़ें जमा सके। यह सब धतकरम एड्स की आड़ में हो रहा है, जिसके चलते वहाँ की विकृति एड्स की स्वीकृति बन जाए।

आज हम अभी भारत की आबादी के एक बहुत बड़े हिस्से को रोटी, कपड़ा, मकान तो छोड़िए शुद्ध पीने योग्य पानी नहीं दे सके हैं। ऐसे में उनकी इन लड़ाइयों को स्थगित करके समलैंगिकता की लड़ाई लड़ना कितना विवेकपूर्ण कहा जा सकता है? क्या हम इसको लेकर कोई विवेक सम्मत विरोध नहीं कर सकते? ■

उदयन वाजपेयी

जन्म १९६० सागर, मध्यप्रदेश। चर्चित कवि-कहानीकार। कहानी संग्रह- सुदेशना, दूर देश की गन्ध, कविता संग्रह- कुछ वाक्य, पागल गणितज्ञ की कविताएँ, एक निबन्ध संग्रह, फिल्मकार मणिकौल के साथ उनके सम्वाद की पुस्तक 'अभेद आकाश' प्रकाशित।. कृतियों का तमिल, बंगाली, मराठी, फ्राँसीसी, पोलिश, बुल्गारियायी, स्वीडिश, अँग्रेजी आदि में अनुवाद। कृष्ण बलदेव वैद फैलोशिप और रज़ा फाउण्डेशन पुरस्कार से सम्मानित।

संपर्क : एफ-९०/४५, तुलसीनगर, भोपाल-४६२००३ ई-मेल : udayanvajpeyi@gmail.com

हमारी सभ्यता और हमारी हालत

करीब दो सौ बरस पहले अंग्रेजों ने भारतीय शिक्षा पद्धति में जो बुनियादी परिवर्तन किये, उसके सबब से हम आज तक आते-आते अपनी ही सभ्यता के प्रतीकों, संकेतों और इशारों को समझने के अयोग्य होते गये हैं। यही अंग्रेजों की मन्शा भी थी। वे भारतीयों को स्वयं भारतीय सभ्यता के प्रति अनजान बनाना चाहते थे और आजादी प्राप्ति के बाद अंग्रेजों की ही शिक्षा व्यवस्था को चालू रखकर हम उन्हीं की आकांक्षाओं को जाने-अनजाने पूरा करने में लगे हैं। हमारे सभी स्कूलों-कॉलेजों में आज जो भी पढ़ाया जाता है वह हमें खुद हमसे, हमें हमारे रीति-रिवाजों से, हमें हमारी अपनी सभ्यता के प्रतीकों से दूर ले जाता है। धीरे-धीरे यह दूरी इतनी बढ़ जाती है कि हमें अपनी ही सभ्यता के प्रतीक रहस्यमय जान पड़ने लगते हैं। कम-से-कम शिक्षा के स्तर पर इस सबका कैसा भी प्रतिकार होते दिखायी नहीं देता। सम्भवतः हमारी सभी राजनैतिक पार्टियाँ अंग्रेजों द्वारा प्रणीत शिक्षा-व्यवस्था को जारी रखने के पक्ष में है। अगर उनमें इसे लेकर ज़रा भी सन्देह है तो उन्होंने इतना काम करना जरूरी नहीं समझा है कि वे इस शिक्षा व्यवस्था का समुचित विकल्प प्रस्तावित कर सकें। दरअसल हमारी राजनैतिक पार्टियों को थोथी रैलियाँ आदि आयोजित करने से विश्राम मिले तब तो वे इस तरह का कोई कार्य कर सकेंगी। उनका पूरा समय अपने बड़े नेताओं को खुश करने और अपने विरोधियों को अनर्गल ढंग से परास्त करने के खेल में बीत जाता है। आश्चर्य की बात है कि धीरे-धीरे हमारे राजनैतिक दलों में सोचने समझने वाले लोगों का अकाल पड़ गया है। कोई भी पढ़ा-लिखा (जिसका आशय डिग्रीधारी निश्चय ही नहीं है) व्यक्ति किसी भी राजनैतिक दल में शामिल होने से

> *हमारे सभी स्कूलों-कॉलेजों में आज जो भी पढ़ाया जाता है वह हमें खुद हमसे, हमें हमारे रीति-रिवाजों से, हमें हमारी अपनी सभ्यता के प्रतीकों से दूर ले जाता है। धीरे-धीरे यह दूरी इतनी बढ़ जाती है कि हमें अपनी ही सभ्यता के प्रतीक रहस्यमय जान पड़ने लगते हैं।*

कतराता है। यह बात राजनैतिक दलों के नेताओं को परेशान करती होगी, ऐसा लगता नहीं है। अगर हमारे देश के धार्मिक मठादि कोशिश करते तो यह सम्भव था कि वे ऐसे शिक्षा संस्थान लोगों के सामने प्रस्तुत कर सकते जिनमें पारम्परिक भारतीय शिक्षा दी जाती। मैं दो बरस पहले कविता पाठ के लिए बैंगलोर के पास आदि चुनचुनागिरी नामक एक मठ में गया था। वहाँ के प्रमुख श्री बालगंगाधर के जन्मदिन के अवसर पर एक राष्ट्रीय कविता पाठ आयोजित किया गया था। आयोजन में सभी कवियों का सम्मान किया गया था। अवसर पाकर मैंने श्री बालगंगाधर से पूछा कि इस मठ के सैकड़ों कॉलेज और स्कूल हैं पर किन्हीं में भी भारतीय ढंग की शिक्षा-दीक्षा क्यों नहीं दी जाती? मुझे कोई भी उत्तर नहीं

मिला। अगर ऐसा नहीं किया जा सकता है तो फिर मठादि को स्कूल कॉलेज खोलने की आवश्यकता ही क्या है। यह काम तो दूसरे लोग बखूबी कर रहे हैं। दूसरे शब्दों में हमारे देश में राजनैतिक दलों जैसी आधुनिक संस्थाओं से लेकर मठों जैसी पारम्परिक संस्थाएँ तक भारतीय मनुष्य की भारतीय सभ्यता से बनती दूरी को लेकर चिन्तित नहीं हैं। वे यह मानकर चल रहे हैं कि भारतीय सभ्यता में ऐसा कुछ नहीं है जिसे गहरायी से पढ़ने-गुनने और पीढ़ी दर पीढ़ी संप्रेषित करने की आवश्यकता है। यही कारण कि हममें से अनेक को अपने रीति-रिवाज अटपटे जान पड़ते हैं। इसका कारण रीति-रिवाजों में नहीं है, हममें है। हमें अपने रीति-रिवाजों को पढ़ने की विधि नहीं आती। इस अर्थ में हम पढ़े-लिखे लोग अशिक्षित ही हैं। यह नहीं कि हमें आधुनिकता बड़ी गहरायी से आती हो। हमें वह भी नहीं आती। कुछ आंकड़ों के अनुसार भारत में जितनी तकनीकि वस्तुएँ (टेक्नोलॉजिकल इक्यूप्मेण्ट) खरीदी जाती हैं उनमें से केवल बीस प्रतिशत ही उपयोग में आती हैं। ज्यादातर वस्तुएँ फिजूल ही खरीदी जाकर यहाँ-वहाँ भटकती फिरती हैं। यह स्तम्भ पढ़ने के बाद आप स्वयं अपने चारों तरफ ऐसी वस्तुओं की शिनाख्त कर सकते हैं जिन्हें बड़ी रुचि से खरीदा जाता है पर जिनका कोई उपयोग नहीं किया जाता।

एक बार मैं बहुत सुबह उठकर टहलने जा रहा था। यह मार्च का महीना था। मैंने देखा कि अनेक स्त्रियाँ नये-नये वस्त्र पहनकर हाथ में पूजा की थाली लिये मन्दिर की ओर जा रही हैं। मैं सोचने लगा कि आज ऐसा कौन-सा त्यौहार है जिसके लिये ये स्त्रियाँ मन्दिर जा रही हैं? मैंने एक स्त्री से पूछा तो उन्होंने बताया कि उस दिन शीतला सप्तमी है। मेरे यह पूछने पर कि इसमें क्या होता है, वे बोली आप चलकर खुद देखें। मैं मन्दिर पहुँचा। कुछ स्त्रियों ने पूजा पूरी कर ली थी, कुछ शुरू कर रही थीं। मुझे बहुत समझ में नहीं आया पर मैंने देखा कि हर स्त्री लाल रंग में अपने हाथ डुबाकर दीवार पर पाँच बार छापा लगाती है। वे छापे बेहद सुन्दर लग रहे थे पर मुझे लगा उनका कुछ आशय भी है। तभी मुझे एक स्त्री ने बताया कि शीतला सप्तमी के दिन बासा खाना खाया जाता है। मैं चौंका। ऐसा क्यों किया जाना चाहिए? धीरे-धीरे मुझे कुछ-कुछ समझ में आने लगा। मार्च के महीने में मन्दिर की दीवार पर पाँच लाल छापों का आशय यह होगा कि अब पाँचों तत्व यानि क्षिति, जल, अग्नि, गगन और पवन गर्म होना शुरू हो गये हैं। ग्रीष्म का आगमन हो रहा है इसलिए एकदम ताजा पका भोजन खाने के स्थान पर कुछ देर रखा भोजन खासकर कुछ देर रखी रोटी खाना शुरू करना चाहिए। कुछ देर रखी रोटी को पचाने में शरीर को कम ऊर्जा का व्यय करना होता है और चूँकि तेज गर्मी को झेलने के लिए शरीर को बहुत-सी ऊर्जा खर्च करनी होगी इसलिए उसके पास खाना पचाने के लिए पर्याप्त ऊर्जा का अभाव हो सकता है। कम ऊर्जा में ही पर्याप्त भोजन पचाने के लिए यह जरूरी है कि हम थोड़ा-सा पहले से ही पचा हुआ भोजन करें। इस पूजा में इतने सारे सुझाव गुंथे हुए थे यह बहुत सोचने के बाद ही मुझे समझ में आया। मेरा पक्का विश्वास है कि हमारे तमाम रीति-रिवाजों में इसी तरह तमाम तरह के सुझाव गुंथे हुए हैं जिन्हें पढ़ने में हम धीरे-धीरे अक्षम होते जा रहे हैं। यही कारण है कि इन रीति-रिवाजों को करने वाले हमारे करोड़ों ग्रामीण लोग हम शहरियों को अट्पटे लगते हैं। यह दूरी नारों से नहीं गहरी समझ से ही दूर हो सकती है।■

"अनेक स्त्रियाँ नये-नये वस्त्र पहनकर हाथ में पूजा की थाली लिये मन्दिर की ओर जा रही हैं। मैं सोचने लगा कि आज ऐसा कौन-सा त्यौहार है जिसके लिये ये स्त्रियाँ मन्दिर जा रही हैं? मैंने एक स्त्री से पूछा तो उन्होंने बताया कि उस दिन शीतला सप्तमी है। मेरे यह पूछने पर कि इसमें क्या होता है, वे बोली आप चलकर खुद देखें।"

गर्भनाल

एक क्लिक पर पूरे अंक एक साथ

www.garbhanal.com

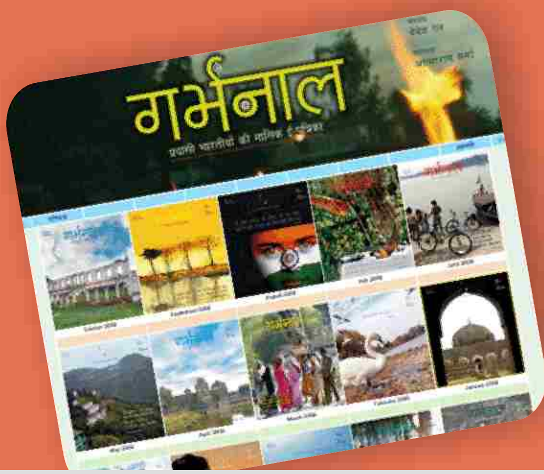

गर्भनाल के पुराने अंक पाएँ

एक साथ एक ही जगह

लॉगऑन करें

www.garbhanal.com

अधिक जानकारी के लिए सम्पर्क करें :

garbhanal@ymail.com

ध्रुव शुक्ल
११ मार्च १९५३ को सागर में जन्म। कवि-कथाकार के तौर पर पहचान। 'उसी शहर में' और 'अमर टॉकीज' उपन्यास, 'खोजो तो बेटी पापा कहाँ हैं', 'फिर वह कविता वही कहानी', 'एक बूँद का बादल', 'हम ही हममें खेलें' कविता संग्रह, 'हिचकी' कहानी संग्रह प्रकाशित। राष्ट्रपति द्वारा कथा एवार्ड और कला परिषद् के रज़ा पुरस्कार से सम्मानित।
सम्पर्क : एम.आई.जी.-५४, कान्हा कुँज, कोलार रोड, भोपाल (म.प्र.) ईमेल - kavi.dhruva@gmail.com

घर तक आ गया बाज़ार

पहले कभी घर से निकलते थे तो कुछ दूर चलकर बाज़ार शुरू होता था। अब तो बाजार घर के इतने पास आ गया है कि जैसे घर में ही हो। घर से निकलते ही बाज़ार शुरू हो जाता है। बुजुर्ग कहा करते कि बाज़ार घर से दूर ही रहे तो अच्छा। पर यह बात अब पुरानी पड़ गयी है। नये बाज़ार ने सब घरों को घेर लिया है।

शहर में जो कॉलोनियाँ रहने के लिए बसायी गयी हैं, उनमें बसने वाले लोग अब अपने घरों के पिछवाड़े में रहने लगे हैं। घर के सामने का हिस्सा किसी दूकान के लिए किराये पर उठा दिया है। उनका घर खोजते हुए जाओ तो उनकी नेम प्लेट बड़ी मुश्किल से दिखायी देती है। उनके घर के सामने लगा दूकान का बोर्ड ही दिखायी देता है।

जिनके घर बहुमंजिले हैं, वे सबसे ऊपर की मंजिल पर रहने चले गये हैं और नीचे का हिस्सा दूकान किराये पर उठा दिया है। दूर से देखो तो लगता है कि जैसे बाजार ही उनके घर को अपने कंधों पर उठाये हुए है। जब बाजार में मंदी आने लगती है तो ऊपर की मंजिल पर रहने वाले लोग इस डर से भरने लगते हैं कि अगर बाजार गिर पड़ा तो उनका घर भी भरभराकर गिर पड़ेगा।

> अब घरों की अपनी कोई पहचान नहीं रही। अब किसी से उसके घर का पता पूछो तो पहले दुकान का नाम लेता है और कहता है कि हम उसी दुकान के पीछे या उसकी बाजू वाली गली में रहते हैं।

अब घरों की अपनी कोई पहचान नहीं रही। अब किसी से उसके घर का पता पूछो तो पहले दूकान का नाम लेता है और कहता है कि हम उसी दूकान के पीछे या उसकी बाजू वाली गली में रहते हैं। घरों से अब सामने के बागीचे और स्वच्छ आकाश भी दिखायी नहीं देता। बाजार ही दिखायी देता है। रात को तारे नहीं, आँखों के सामने बाज़ार ही झिलमिलाता है।

पहले के ज़माने में बाज़ार घर से कुछ दूर होने के कारण बहुत-सी खरीददारी कई दिनों तक स्थगित बनी रहती थी। जल्दी-जल्दी खूब सारी चीज़ें घर में आ नहीं पाती थीं। उनके बिना भी कई दिनों तक घर का काम चलता रहता था। पर अब घर में ही बाजार आ जाने से मन रोज़ ललचाता है। जिन चीजों की कोई खास ज़रूरत नहीं उन्हें भी लोग यह सोचकर खरीद लाते हैं कि कभी तो काम आयेंगी।

चीजें इतना ललचाती हैं कि जीवन से दूर जाने का नाम ही नहीं लेतीं और घर बेकार की चीज़ों से भरता जाता है।

> बाजार आपको बुला रहा है- आपके कान जैसे चौबीसों घण्टे बाजार की ही बात सुन रहे हैं। आपकी आँखें बाजार को ही टुकुर-टुकुर ताक रही हैं। आपके पाँव लगातार बाजार की ओर बढ़ रहे हैं। आपके हाथ बाजार को छूने के लिए ललचा रहे हैं। खरीदने की हिम्मत हो तो खरीद लें।

जिन घरों में चार-छह कप-प्लेट से ही रोज़ का काम चल जाता होगा वहाँ मँहगी क्रॉकरी आलमारियों में सजी रहती है। बहुत-सी साड़ियाँ वर्षों पहनी नहीं जाती पर खरीदकर रख ली जाती हैं कि पता नहीं ये बाजार में कहीं खत्म न हो जायें। बाजार भी तो बार-बार ऑफर देता है कि जल्दी करो, नहीं तो बाद में पछताओगे। आजकल लोग अपने बड़े-बूढ़ों की बात भले न मानें पर बाज़ार की बात मानने से कभी इंकार नहीं करते। और फिर जब ऐश्वर्या राय और विपाशा बसु कुछ खरीदने के लिए कह रही हों तो उनकी बात कौन टाल सकता है।

सीता की रसोई में अब गृहणियों के हाथ के बने व्यंजन कितने कम घरों में अपना स्वाद और खुशबू बिखेरते हैं। अब घरों में कोई मसाले नहीं पीसता। पिसे-पिसाये ही बाज़ार में मिल जाते हैं। खरल और सिलबटना अब संग्रहालयों की चीज़ें बन गये हैं। अब चटनी में पत्थर का स्वाद नहीं आता। अक्सर लगता है किसी एक स्वाद की कमी रह गयी है। अब मिक्सी सब कुछ पीस देती है। पीसती क्या है, मिक्स कर देती है। बाज़ार घर में घुस आयेगा तो मिक्स-मिलावट ही घर में आयेगी और घर का स्वाद चला जायेगा।

लोगों ने अपने घरों की दीवारें तक बाजार को किराये पर दे रखी हैं। घर के भीतर फँसे बच्चे और बहुएँ खुली हवा के लिए तरस रहे हैं और बाहर घर की दीवार पर कैटरीना क़ैफ किसी कंपनी के हवादार पंखों का विज्ञापन कर रही हैं। बूढ़ों के लिए घर में जगह नहीं बची। बाजार से लायी गयी अनगिनत चीज़ों से अँटे पड़े घर में वे किसी कोने में बैठे अखबार देखते रहते हैं जिनके हर पन्ने पर बाजार ही बाजार फैला दिखायी देता है। जिन चीज़ों की उनकी ज़िन्दगी में अब ज़रूरत नहीं रही वे उनकी आँखों के सामने आ-आकर उन्हें मोहित करती रहती हैं।

महानगरों में सुबह से शाम तक पूरी ज़िन्दगी बाज़ारों में ही तो गुज़र रही है। लोग बड़े सबेरे काम पर चल देते हैं। साथ में एक थैला भी रख लेते हैं कि लौटते वक्त बाज़ार से कुछ सौदा-पता करते आयेंगे। अब तो थैला रखने की भी ज़रूरत नहीं रही। बाज़ार सामान के साथ थैला भी देता है और उसकी कीमत वसूल कर लेता है।

घर तो सिर्फ़ दिन भर बाजारों में भटककर लौट आने के लिए हैं। जहाँ बहुत सारी चीजों के बीच रोज सोने के लिए जगह बनाना पड़ती है। डर लगा रहता है कि कहीं चीज़ें भरभराकर गिर न पड़ें। चोरों से डर तो लगा ही रहता है। जब घर बाज़ार तक आ गया तो चोर भी बाजार से घर तक आने लगे। खूब सारी चीजों से भरा हुआ घर चोरों के लिए आमंत्रित करता-सा लगता है।

चोर तो ठीक, अब बाजार पूरे घर को आमंत्रित कर रहा है। सुबह की चाय और नाश्ते से लेकर दोपहर और रात के खाने तक बाजार आपके साथ है। घर आपका साथ निभाना छोड़ दे तो बाजार आपका साथ निभाने के लिए चौबीसों घण्टे आकर साथ खड़ा है। आप बाजार में पूरी तरह आ भर जाइये फिर देखिए वह आपको और आपके परिवार को कैसे सँभालता है। आप घर को भले न सँभाल सकें बाजार आपको सँभाल लेगा।

बाजार आपको बुला रहा है- आपके कान जैसे चौबीसों घण्टे बाजार की ही बात सुन रहे हैं। आपकी आँखें बाजार को ही टुकुर-टुकुर ताक रही हैं। आपके पाँव लगातार बाजार की ओर बढ़ रहे हैं। आपके हाथ बाजार को छूने के लिए ललचा रहे हैं। खरीदने की हिम्मत हो तो खरीद लें। नहीं तो किराये पर ले आयें। चीज़ें पुरानी पड़ गयी हों तो उन्हें माटी मोल बाज़ार को बेच दें। बाजार माटी का भी मोल लगाने में माहिर है। यदि आप अपनी माटी का मोल जाने बिना बाजार जा रहे हैं तो कृपया एक बार गौर से अपने आपको और अपने घर को ज़रूर देख लीजिए।■

ब्रजेन्द्र श्रीवास्तव

लेखक-समीक्षक, साहित्य एवं कला, विज्ञान एवं अध्यात्म, ज्योतिष एवं वास्तु, ब्रह्मविद्या एवं ब्रह्माण्ड विज्ञान जैसे विविध विषयों पर निरंतर लेखन. ५० से अधिक शोध-पत्र विश्वविद्यालयों व राष्ट्रीय संगोष्ठियों में प्रस्तुत। विश्वविद्यालय में अतिथि अध्यापन का सुदीर्घ अनुभव। आजीवन सदस्य : ग्वालियर एकेडेमी ऑफ मैथमेटिकल साइंसेज, इण्डियन इंस्टीट्यूट ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, नई दिल्ली।

सम्पर्क : २६९, जीवाजी नगर, ठाठीपुर, ग्वालियर-४७४०११

ईमेल - brijshrivastava@rediffmail.com मोबाइल - ९४२५३६०२४३

चिन्तन

ज्योतिष की दशा और दिशा-४

वास्तु : भय दिखाकर धन कमाने की कला

वास्तु विद्या का उपयोग पिछले लगभग चार दशकों से अचानक ही बहुत तेजी से बढ़ गया है। वास्तु के इस चलन को बढ़ावा देने में बिल्डरों और भूखण्ड विक्रेताओं की भी बहुत भूमिका है। वास्तु के अनुरूप प्लॉट की द्वार दिशा है तो दाम अधिक वसूले जा सकते हैं इसलिए अपने साइट प्लान में इन्होंने वास्तु का 'तड़का' लगाना शुरू कर दिया है। तो क्या ५०-६० साल पहले वास्तु विद्या या वास्तुशास्त्र नहीं था? वास्तु तो बहुत पहले से था पर सर्वप्रथम तो यह राजाओं के लिए ही था फिर मन्दिर निर्माण और यत्किंचित नगर निर्माण में भी इसका उपयोग होता था। आम जनता के अपने आवासों, दुकानों आदि में इसका विचार बहुत लचीलेपन के साथ किया जाता था और आजकल जिस स्तर का दिशा भ्रम भवन के दरवाजे खिड़की व उपयोग स्थलों को लेकर फैलाया गया है वह बिल्कुल नहीं था।

वास्तु विद्या की प्राचीनता : वराह मिहिर ने वास्तुविद्या अध्याय में जो विवरण भवन निर्माण के दिए हैं उनमें राजा, राजकुमार, मंत्री, सेनापति आदि के भवन निर्माण के भी शामिल हैं। यह अध्याय उन्होंने छठी सदी में लिखित अपनी वृहत संहिता पुस्तक में दिया है। इसमें सामान्यजन के आवासों के लिए कोई स्पष्ट दिशा-निर्देश नहीं हैं।

> *वास्तु शब्द का मूल 'वस्तु' है जो दिक् और काल - लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई और समय घेरती है। कोई निर्मित वस्तु अर्थात "निर्मिति" वास्तु है कोई भी स्थल योजना Site Plan वास्तु है।*

६४ पद वास्तुमण्डल : चारों दिशाओं में बन सकते हैं द्वार

ग्यारहवीं सदी में मध्यप्रदेश के धार नगरी के राजा भोज ने 'समरांगण सूत्रधार' ग्रंथ में नगर निवेशन-टाउन प्लानिंग के लिए वास्तुपद मण्डल की चारों दिशाओं में राजप्रासाद बन सकते हैं, यह व्यवस्था दी तथा इन चारों दिशाओं में स्थित प्रासादों के लिए किसी एक दिशा में मुख्य प्रवेश द्वार शुभ बताया है। इनमें से नगर के पूर्व दिशा के राजमहल का प्रवेश-द्वार का मुख दक्षिण दिशा की ओर उत्तम बताया है। इसमें पुर-निवेश या नगर रचना अध्याय में कर्म एवं जाति अनुसार नगर की दिशा व दिशा कोणों में नगर वासियों को स्थापित करने की बात कही गई है, पर इसमें सुविधा और सुरक्षा की नीति ही अधिक दिखाई देती है। यदि वास्तु विद्या की प्राचीनता को खोजें तो अथर्ववेद का उपवेद स्थापत्यवेद Architecture है। इस स्थापत्य में ही व्यापक तौर पर वास्तुकला, मूर्तिकला, शिल्पकला भवन निर्माण कला

> वास्तु की किसी भी प्राचीनतम या बाद में लिखी पुस्तक में दक्षिण दिशा का मुख्य द्वार निन्दित नहीं माना गया है पर आज के वास्तुविदों ने चार दिशाओं के स्थान पर तीन दिशाएं बना दी हैं - दक्षिण को इसमें से निकाल दिया है। इसका फायदा प्रॉपर्टी डीलरों को मिल रहा है।

सम्मिलित है। वात्स्यायन ने योग्य व्यक्ति से चौंसठ कलाओं में निपुणता की अपेक्षा की है जिसमें मूर्ति तक्षण कला, चित्रकला और भवन वास्तु कला भी समाहित है।

वास्तु का अर्थ : यहाँ यह जान लेना उचित होगा कि 'वास्तु' का अर्थ क्या है? वास्तु शब्द का मूल 'वस्तु' है जो दिक् और काल - लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई और समय घेरती है। कोई निर्मित वस्तु अर्थात "निर्मिति" वास्तु है कोई भी स्थल योजना Site Plan वास्तु है। निराकार को साकार बनाने में ब्रह्मा ने जिस शक्ति का उपयोग किया उसे ही वास्तु पुरुष की संज्ञा दी गई। वस्तुतः भारतीय दर्शन में सभी विज्ञान व कला का चरम उत्कर्ष ब्रह्म में और दैवीय शक्तियों में देखा जाता है। इसलिए भवन निर्माण में भी वास्तुपुरुष मण्डल की कल्पना की गई है तथा साइट प्लान ६४, ८१, १०२४ पद या ग्रिड का हो पर सभी में ४५ देवता या शक्तियाँ इसमें व्याप्त रहती हैं।

वास्तुविदों का दक्षिण दिशा विरुद्ध फतवा निराधार है : यह तो हुई सैद्धांतिक बात। व्यवहार में वास्तु पदमण्डल या साइटप्लान का ६४, ८१ आदि पदों या ग्रिडों में विभाजन के साथ इनका शुभ-अशुभ की दृष्टि से वर्गीकरण ही सबसे बड़ी समस्या है। अधिकांश वास्तुविद इसकी मूल भावना को ठीक से नहीं समझते या फिर जानबूझ कर तथ्य को विकृत करते हैं। इसमें सबसे अधिक भ्रम दक्षिण दिशा को लेकर वास्तुविदों के नाम पर बाजार में आए अज्ञानियों और लालची व्यक्तियों ने फैला रखा है।

वास्तु की किसी भी प्राचीनतम या बाद में लिखी पुस्तक में दक्षिण दिशा का मुख्य द्वार निन्दित नहीं माना गया है पर आज के वास्तुविदों ने चार दिशाओं के स्थान पर तीन दिशाएं बना दी हैं - दक्षिण को इसमें से निकाल दिया है। इसका फायदा प्रॉपर्टी डीलरों को मिल रहा है - अन्य दिशाओं की तरफ मुख वाले भूखण्डों या फ्लैट आदि का मूल्य दोगुना से भी अधिक बताया जाता है। इसके बाद इस भ्रम को फैलाकर कर्मकाण्ड यंत्र स्थापना आदि के माध्यम से दक्षिण दिशा द्वार के आवास की शान्ति के नाम पर खूब कमाई की जाती है।

दक्षिण दिशा द्वार पर वास्तुशास्त्र क्या कहता है?

यहाँ सामान्य पाठकों की जानकारी के लिए और दक्षिण दिशा द्वार वाले आवास, दुकान, ऑफिस, शोरूम के स्वामियों के भय निवारण के लिए वास्तुशास्त्र की अधिकृत पुस्तकों से सार रूप में यह जानकारी दी जा रही है कि दक्षिण दिशा द्वार का भवन भी शुभ और प्रशस्त है तथा अन्य तीन दिशाओं के द्वार भी परिस्थितिनुसार वर्जित हैं। दूसरी सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि चारों दिशाओं में से कोई भी दिशा पूरी तरह शुभ नहीं है। बल्कि प्रत्येक दिशा का एक या अधिक भाग अर्थात पद ही प्रशस्त है शेष दिशा व उसके शेष भाग प्रशस्त या अनुकूल नहीं है।

किसी प्लॉट पर आठ खड़ी व आठ आड़ी रेखाएं खींचने पर ग्राफ पेपर की तरह ६४ वर्ग या पद बनेंगे। इन पदों के सबसे बाहर बाउंड्री के पदों पर मुख्य द्वार चारों दिशाओं में इस प्रकार बनेंगे। (देखिए वास्तु पद मंडल चित्र)

पूरब में : बाएँ से तीसरे-चौथे पद या हिस्से में द्वार उत्तम, शेष पदों में शुभ नहीं। **दक्षिण में :** बाएँ से चौथे पद में द्वार उत्तम शेष में नहीं। **पश्चिम में :** पाँचवे पद में द्वार उत्तम शेष में नहीं तथा **उत्तर में :** बाएँ से तीसरे चौथे पद में द्वार उत्तम शेष में नहीं। स्पष्ट है कि यहाँ चारों दिशाओं में किसी एक हिस्से में द्वार बन सकता है। दक्षिण दिशा यहाँ वर्जित नहीं है।

अन्य विधि : ज्योतिर्निबंध में निर्देश है कि जिस दिशा में द्वार बनाना हो उस दिशा के नौ सम भाग करें तथा उसके बाएँ से चौथे भाग में मुख्य द्वार बनाएँ इसमें दक्षिण द्वार भी बन सकता है। एक अन्य विभाजन में केवल चौथा पद लेने के स्थान पर इनका क्रम इस प्रकार दिया है : दक्षिण दिशा द्वार के लिए चौथा छठा पद लें, पूर्व के लिए तीसरा, चौथा, उत्तर व पश्चिम के लिए चौथा व पाँचवा पद मुख्य द्वार के लिए उत्तम है। इसके अतिरिक्त एक अन्य विधि के अनुसार किसी भी

दिशा को नौ भागों में बाँटकर ग्रहों के सूर्य चन्द्र क्रम से प्रत्येक भाग आवंटित कर दें और बुध, गुरु, शुक्र भाग में (बाएँ से गिनकर) द्वार बना सकते हैं।

मुहूर्त में दक्षिण दिशा द्वार सहित सभी दिशा के द्वार वाले भवनों के लिए अलग-अलग मुहूर्त दिए हैं यदि दक्षिण दिशा द्वार वर्जित होता तो मुहूर्त ही क्यों दिए जाते? इसलिए यदि आपका मुख्य द्वार दक्षिण या पश्चिम में है तो चिन्तित होने की आवश्यकता नहीं है।

द्वार दिशा व्यक्तिगत होती है : द्वार को व्यक्तिगत आधार पर बनाने की भी विधि दी है जिसमें "आय" निकाली जाती है इसमें भी चारों दिशाओं में आय अनुसार द्वार शुभ बताया है। जैसे कि आय यदि ७ अंक आई तो दक्षिण व पूर्व में ही द्वार शुभ होगा एवं ५ अंक आय आने पर केवल दक्षिण दिशा द्वार ही शुभ होगा। ज्योतिष के दक्षिण भारतीय ग्रंथ जातकादेश मार्ग में व्यक्ति की जन्म पत्रिका में अष्टकवर्ग नामक विधि से प्राप्त अंकों के आधार पर रसोईघर, पूजागृह, कचरा स्थान घर में बनाने का सुझाव है जो प्रचलित स्थिर मानदण्ड के पूरी तरह विपरीत ही जाता है जिसमें कि पूजा घर ईशान में, रसोई आग्नेय कोण में बनाने पर जोर है।

वास्तु शास्त्र में गृहस्वामी के हाथ के माप के आधार पर या गृहस्वामिनी, ज्येष्ठ पुत्र अथवा स्थपित अर्थात मुख्य कारीगर के हाथ के माप के आधार पर गृह का क्षेत्र तय करने का सुझाव भी है।

वास्तु और ज्योतिष : ज्योतिष शास्त्र की दृष्टि से देखें तो प्रत्येक ग्रह अपनी विशेष दिशा में प्रबल होता है इसलिए जन्म पत्रिका में जो ग्रह रहने के स्थान पर सर्वाधिक प्रभाव डालता है उसी ग्रह के अनुसार व्यक्ति का आवास होता है यह आवास परिस्थिति अनुसार बदलता भी रहता है। यदि शुक्र प्रबल है या मंगल प्रबल है तो नगर के दक्षिण में या दक्षिण दिशा द्वार का भवन रहने को मिलता है। सूर्य प्रबल है तो आँगन वाला या पूरब दिशा का द्वार होता है। पर आज की फ्लैट प्रणाली के आवास में इन ग्रहों की भूमिका की भी बदलकर व्याख्या करना होगी। पर यहाँ उद्देश्य कहने का यह है कि आवास आदि की दिशा आदि का विचार व्यक्तिगत ही अधिक हो सकता है सबके लिए एक जैसे नियम, जैसा कि आज के व्यावसायिक अधकचरे वास्तुशास्त्र में जोर-शोर से बताए जाते हैं, शास्त्र सम्मत नहीं हैं तथा व्यावहारिक भी नहीं हैं। आयुर्वेद में जैसे प्रत्येक व्यक्ति की वात पित्त कफ प्रकृति की न्यूनता अधिकता के परीक्षण के बाद ही औषधि दी जाती है उसी प्रकार वास्तु में भी व्यक्तिगत आधार होता है जिसकी उपेक्षा वर्तमान में प्रैक्टिस कर रहे वास्तुशास्त्री कर रहे हैं।

द्वार दिशा का रोचक उदाहरण : दिशाओं पर शुभ-

पृथ्वी पर सर्वप्रथम नगर व्यवस्था करने वाले राजा पृथु गाय रूप पृथ्वी का पीछा करते हुए।

> *"वास्तु विद्या का लक्ष्य पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश इन तत्वों का अधिकतम सुविधाजनक उपयोग करना है ताकि शरीर और मन स्वस्थ रहे कार्यकुशलता बढ़े। पर वास्तु से भाग्य निर्माण की बात करना वास्तुशास्त्र के मूल दर्शन के साथ धोखाधड़ी ही है।"*

अशुभ का स्थायी लेबिल लगाने और खिड़की दरवाजे एवं बैठने की दिशा को स्थायी तौर पर घोषित शुभाशुभ दिशा में करवाने की जो प्रथा अल्पज्ञ वास्तुविदों ने चलाई है उसका एक उदाहरण देखिए : जब आंधप्रदेश के मुख्यमंत्री एन.टी. रामाराव थे तो उन्हें वास्तुविद ने सुझाव दिया कि वह अपने सचिवालय का मुख्य द्वार उत्तर की तरफ कर लें तो यह उनके लिए शुभ रहेगा पर उत्तर दिशा में झुग्गी-झोपड़ियाँ थीं। उन्होंने करोड़ों रुपये देकर उस तरफ की जमीन खरीदी, झोपड़ियाँ हटवाईं और अपनी सरकार के सचिवालय का द्वार भी उत्तर की तरफ कर दिया। तब क्या हुआ? वास्तुविद के अनुसार अच्छा ही होना चाहिए था पर हुआ यह कि इसके कुछ दिनों बाद एन.टी. रामाराव की सरकार गिर गई।

वास्तु से भाग्य नहीं बदलता : सच बात तो यह है कि वास्तु विद्या का लक्ष्य पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश इन तत्वों का अधिकतम सुविधाजनक उपयोग करना है ताकि शरीर और मन स्वस्थ रहे कार्यकुशलता बढ़े। पर वास्तु से भाग्य निर्माण की बात करना वास्तुशास्त्र के मूल दर्शन के साथ धोखाधड़ी ही है। प्रख्यात भारतविद एवं वास्तुशास्त्री डॉ. प्रभाकर आप्टे, पुणे का कथन है कि वास्तुपद मण्डल में पदों का विन्यास ले आउट, विवरणात्मक है, नियामक नहीं है - It is descriptive and not prescriptive.

वास्तु विद्या या वास्तुशास्त्र पर्यावरण के हवा, पानी, प्रकाश आदि के अधिकतम सद्उपयोग की कला तो है पर इसका व्यक्ति के भाग्य से व्यापार लाभ नौकरी में पदोन्नति जैसी घटनाओं को बनाने में कोई भूमिका नहीं है।

जब स्वामी विवेकानन्द ने स्थापत्य नियम बदले : स्वामी विवेकानन्द ने रामकृष्ण मिशन बेलूर मठ में परमहंस रामकृष्ण देव के मन्दिर स्थापत्य में गर्भगृह के निर्माण के परम्परागत नियमों में व्यापक परिवर्तन किए थे। शास्त्रों के अनुसार मूर्ति के आकार के आधार पर ही मन्दिर के गर्भगृह (जहाँ मूर्ति स्थापित होती है वह कक्ष) की लम्बाई-चौड़ाई तय की जाना चाहिए। इस गर्भगृह के आकार के आधार पर ही मन्दिर के मण्डपम् गोपुरम् आदि बनते हैं। (बृहत संहिता वास्तुकला अध्याय श्लोक ११-१६) इस प्रकार के स्थापत्य निर्माण के कारण मन्दिर के अन्तरवर्ती भाग में प्रकाश और वायु दोनों की कमी रहती है। स्वामी विवेकानन्द ने इसके स्थान पर प्राचीन बौद्ध चैत्य के विशाल कक्ष की तर्ज पर मूर्ति के आगे विशाल आयताकार कक्ष बनवाया जहाँ सभी साधक मूर्ति के आगे बैठकर प्रार्थना पूजा में भाग ले सकते हैं। लेखक ने स्वयं चेन्नई में ७ फरवरी २००० में उद्घाटित तथा इसी प्रकार से निर्मित रामकृष्ण मन्दिर के कक्ष में इस दर्शन सुविधा और अन्तरंगता का अनुभव भी किया है।

वास्तु पर आधुनिक स्थापत्य विशेषज्ञों की राय : आर्किटेक्चर डिजाइन पत्रिका ने इसे प्रकाशित किया है। विज्ञान भारती प्रदीपिका जबलपुर में प्रकाशित, इसके हिन्दी अनुवाद का सार संक्षेप इस प्रकार है :

- वास्तु ने आर्किटेक्ट का भतीजा बनकर ठग लिया है : हफीज कॉन्ट्रैक्टर मुम्बई का कहना है कि वास्तुशास्त्र गरीब भतीजा बनकर हमारे क्षेत्र में आया पर इस भतीजे ने आते ही हमारे ग्राहकों के मन में हमारे प्रति भय उत्पन्न करके हमारी आफत कर डाली है। कभी इसका कोई आधार बताया जाता है, कभी कुछ।

- वास्तु सतही प्रयोग है : गेरार्ड दा कुन्हा १९६२ से गोवा में विशेषकर ग्रामीण भवन रचना में वास्तु कार्य कर रहे हैं। उनका अभिमत है कि वास्तु अंधविश्वास पर आधारित है और हमारे व्यवसाय का अपमान कर रहा है।

- वास्तुपुरुष केन्द्र है उसकी अभियोजना करना ही चाहिए : अहमदाबाद के बालकृष्ण वी. दोषी, पद्मश्री सहित अनेक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मान से विभूषित हैं। आपका मत है कि वास्तु पर्यावरण है, पुरुष ऊर्जा और वास्तुमंडल, जन्मपत्री ये तीनों ही उपयोगी हैं पर कठोर नियम से काम नहीं चलेगा। चौकोर में ही सभी परिसर कैसे डिजाइन किए जा सकते हैं? वास्तु की जैव केन्द्रीयता ही मुख्य तत्व है।

- प्राचीन भारत में एक वर्ग विशेष के लिए बना था वास्तु : उत्तम चन्द्र जैन आई.आई.टी. स्नातक हैं तथा १९६१ से इस क्षेत्र में हैं। उनका अभिमत है कि भौतिक लाभ के लिए इसका उस दिशा में दरवाजे खिड़की या कमरे बदलना तो कोई आर्किटेक्चर नहीं है आप धनवान नहीं बन सकते। इसमें रहस्यात्मकता का स्थान नहीं होना चाहिए।

- प्रारम्भ में यह ठीक था अब प्रचलित तरीका असंगत और विरोधाभासी है : वयोवृद्ध अच्युत कान विन्द्र दिल्ली का कथन है कि प्राचीन सामन्ती परम्परा के लिए इसका विकास हुआ पर सामान्यजन तो आज भी उसी रूप में विद्यमान है पहले यह ठीक था जैसे वायु की उल्टी दिशा में रसोई नहीं हो पर आज के नगरीकरण में इस पुराने वास्तु से काम नहीं चलेगा आज के वास्तु शास्त्री एकमत भी नहीं हैं।

- बीमार के लिए अजीब दवा की तरह तरह है वास्तु : लन्दन स्थित रोमी खोसला का कहना है कि वास्तु का पुनर्जागरण विश्व स्तर पर है जो कभी कुछ कहता है कभी कुछ। इसके प्रयोग भौतिकी से सिद्ध नहीं होते। वास्तु का रेमेडियल वास्तु अनोखा है।

- पुनः व्याख्या आवश्यक : वयोवृद्ध अनन्त राजे अहमदाबाद का कथन है कि आदमी के मन को भयभीत किए बिना ही वास्तु की विवेक संग व्याख्या जरूरी है।

- पुराना वास्तु शास्त्र नई आवासीय श्रृंखला का समाधान नहीं कर सकता : जबलपुर के अनिल घोपे का अभिमत है कि पहले खुले में भोजन बनता था इसलिए हवा से घर में आग न लगे इसलिए अग्नि कोण में रसोई का प्रावधान था। अब बहुमंजिला बस्तियों में वातानुकूलन लिफ्ट आदि सुविधाओं का वास्तु में कोई समाधान नहीं है इसे सुधारा जाना चाहिए।

निष्कर्ष यह कि वास्तु विद्या या वास्तुशास्त्र पर्यावरण के हवा, पानी, प्रकाश आदि के अधिकतम सद्उपयोग की कला तो है पर इसका व्यक्ति के भाग्य से व्यापार लाभ नौकरी में पदोन्नति जैसी घटनाओं को बनाने में कोई भूमिका नहीं है। वास्तु से बहुत अधिक अपेक्षा करना ठीक नहीं। एक ही घर के बच्चों का वास्तु पर्यावरण एक सा होने पर भी उनका विकास अलग-अलग होता है। इसलिए तोड़-फोड़ वास्तु या उपाय-वास्तु के स्थान पर आत्मबल बढ़ाने के लिए ध्यान करें अच्छी पुस्तकों और व्यक्तियों का सत्संग करें।■

मनोज कुमार श्रीवास्तव

विचारशील लेखक के तौर पर ख्याति. गद्य एवं पद्य पर समान अधिकार. कविता के संसार से अलग, उनका गद्य विचार जगत की गहराईयों में जाता है. अपनी परम्परा से निरंतर संवाद करता इनका लेखन आधुनिकता के प्रचलित मुहावरों से भी बाहर जाता है. प्रकाशित कृतियां : कविता संग्रह - 'मेरी डायरी से', 'यादों के संदर्भ', 'पशुपति', 'स्वरांकित' और 'कुरान कविताएँ'. 'शिक्षा के संदर्भ और मूल्य', 'पंचशील वंदेमातरम्', 'यथाकाल' और 'पहाड़ी कोरबा' पर पुस्तकें प्रकाशित. 'सुन्दरकांड' के पुनर्पाठ पर छह खण्ड प्रकाशित. दुर्गा सप्तशती पर 'शक्ति प्रसंग' पुस्तक प्रकाशित. सम्प्रति : १९८७ संवर्ग के भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारी.

सम्पर्क : shrivastava_manoj@hotmail.com

व्याख्या

भक्तिं प्रयच्छ रघुपुङ्गव निर्भरा मे

लोरी पोप्पिंगा की एक कविता याद आती है :

I long to long for Christ
Deep down inside
In the innermost part
of my life
Not just on the surface
for show
But down in my heart
Where I'll grow

I need to need him
For my daily bread
Deep down in my heart
Not just in my head
To know, really know
He's sustainer of all
And all on my own
I will fall

I desire to desire His Word
All day long
Where the praise of my heart
overflows in a song
The words of my mouth
Honestly reflect
Christ in my life
in every respect.

यह कविता मुझे 'निर्भरां भक्ति' का एक अच्छा उदाहरण लगती है। भगवान के बारे में यह मान्यता अक्सर प्रचलित है कि वे दुष्टों के दर्पदलन के लिए, **'विनाशाय च दुष्कृताम्'**, अवतार लेते हैं। कहीं यह भी कहा गया है कि साधुओं की रक्षा के लिए वे अवतार लेते हैं। **'जब जब होइ धरम कै हानी/बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी।'** लेकिन सुंदरकांड के इन तीन श्लोकों में तुलसी का जोर सिर्फ भक्ति पर है। श्रीमद्भागवत के अनुसार भगवान का अवतार केवल धर्मग्लानि की निवृत्ति तथा धर्म संस्थापना एवं दुष्टदर्पदलन तथा साधु परित्राण के लिए जितना होता है, उतना होता है किन्तु उसके कहीं पहले और कहीं ज्यादा वह मुख्यतया

> आदमी की निर्भरता में ईश्वर की प्रतिष्ठा है। लेकिन क्या इससे ऐसा नहीं लगता कि खुद ईश्वर का एक बहुत बड़ा अहं है जो वह अपने सामने लोगों को टिकने ही नहीं देता, जो आदमी को हमेशा अपने कदमों तले झुकाए ही रखना चाहता है, जो मनुष्य को उसकी 'औकात' बताने में मजा लेता है!

भारतीय विचार पद्धति यह कहती है कि सेवक के गौरव से स्वामी का गौरव है, भक्त के गौरव से भगवान का गौरव है। इसका अर्थ यह नहीं कि हनुमान कोई अहंमन्य शख्सियत हैं बल्कि यह कि भगवत्ता उनमें प्रतिबिंबित होती है और उनकी महिमा भगवान की प्रतिद्वंद्वी नहीं है, प्रतिबिंब है।

अमलात्मा परमहंस महामुनीन्द्रों को भक्तियोग विधान के लिए होता है। भगवान का अवतार भक्त के लिये : **'तथा परमहंसानां मुनीनाममलात्मनम्/भक्तियोगविधानार्थ कथं पश्येमहि स्त्रियः'** (भा.पु. १/८/२०) सुंदरकांड में सीता और राम के बीच कान्त भाव की भक्ति है, हनुमान और राम के बीच सेवक और सेव्य के रिश्ते हैं - सेवा-भाव की भक्ति का आदर्श हनुमान और विभीषण के रूप में साकार हुआ- **'सर्वलोक शरण्याय विभीषणमुपस्थितम्'** (वा.रा. ६/१८/१६) **'राघवं शरणं गतः'** यह वही शरणागति है जिसके बारे में वैदिक काल में **'मुमुक्षुर्वे शरणमहं प्रपद्ये'** कहा गया था (श्वे. ३०/६/२३) में। लेकिन राम-सीता के प्रेम की बात हो या हनुमान-राम की 'सेवा' की या विभीषण-राम की शरणागति की - भक्ति में हर जगह निर्भरता का एक अनुतत्व है ही। **'तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा, जानत प्रिया एकु मनु मोरा'** - राम कहला भेजते हैं - कि हे प्रिये! मेरे और तेरे प्रेम का तत्व (रहस्य) एक मेरा मन ही जानता है - और साथ ही यह भी कहते हैं - **'सो मनु सदा रहत तोहि पाहीं/जानु प्रीति रसु एतनेहि माहीं'** - कि और वह मन सदा तेरे पास ही रहता है, बस मेरे प्रेम का सार इतने में ही समझ ले। विभीषण का भक्ति का आदर्श भी छोटा नहीं है - **'अब कृपाल निज भगति पावनी/देहु सदा सिव मन भावनी'** - कि अब तो हे कृपालु! शिवजी के मन को सदैव प्रिय लगने वाली अपनी पवित्र भक्ति मुझे दीजिये, यह माँग भी निर्भरा भक्ति की मांग है क्योंकि कहा यह जा रहा है कि भक्ति भी भक्त का कृत्य नहीं है, वह भी भगवान का दान है। दूसरे, शिव और राम की एक-दूसरे में अनन्य आस्था है। स्कंदोपनिषद् में **'शिवस्य हृदयं विष्णुः विष्णोश्च हृदयं शिवः'** कि शिव का हृदय विष्णु हैं और विष्णु का हृदय शिव हैं। शिवपुराण में भी यही कहा गया : **'ममैव हृदये विष्णुर्विष्णोश्च हृदयं ह्यहम्'** - कि मेरे हृदय में विष्णु हैं और विष्णु के हृदय में मैं हूँ। (रुद्रसंहिता, सृष्टि खंड) इस तरह की अन्योन्यता तुलसी की भक्ति का आदर्श है। ध्यान दें उनके शब्द : हे रघुकुल श्रेष्ठ! मुझे अपनी परिपूर्ण भक्ति दें। निर्भरा भक्ति दें। भक्ति का तुलसी का आदर्श निर्भरा भक्ति का है। वे मानस में कहते हैं : **'निर्भर प्रेम मगन मुनि ज्ञानी/कहि न जाइ सो दसा भवानी'** या अत्रि के द्वारा वर्णित : **'तन पुलक निर्भर प्रेम पूरन नयन मुख पंकज दिए'** यह ऐसा नहीं है जैसा कि टेस्टामेंट में कहा गया कि "No flesh should glory in his presence,' कि उसकी उपस्थिति में कोई अन्य हाड़ मांस का व्यक्ति चमकना नहीं चाहिए बल्कि हम तो रामकथा में हनुमान के तेज को पूरी दीप्तिमयता में चमकते देखते हैं। कभी राम मूर्च्छित होते हैं, तो कभी लक्ष्मण लेकिन हमेशा हनुमान उनकी रक्षा करते हैं। भारतीय विचार पद्धति यह कहती है कि सेवक के गौरव से स्वामी का गौरव है, भक्त के गौरव से भगवान का गौरव है। इसका अर्थ यह नहीं कि हनुमान कोई अहंमन्य शख्सियत हैं बल्कि यह कि भगवत्ता उनमें प्रतिबिंबित होती है और उनकी महिमा भगवान की प्रतिद्वंद्वी नहीं है, प्रतिबिंब है। हनुमान ईसा की तरह कोई भगवद्भक्तों को बचाने वाले (Saviour) नहीं, उनका स्टेटस तो भगवान को बचाने वाले का है। अहिरावण की पूरी कथा क्या है? लेकिन यह वह भक्त है जिसमें कोई कर्ता-भाव नहीं है। यह समझता है कि वह ईश्वरेच्छा का निमित्त है। जिसने स्वयं को उदात्तता के उस स्तर पर अनुभव किया है कि स्वयं ईश्वर भी कहें - **'प्रति उपकार करौं का तोरा/सनमुख होइ न सकत मन मोरा।'** यह ईश्वर भी वह है जो अपने भक्तों को नीचा नहीं दिखाना चाहता। यह ईश्वर अपने भक्त को अपना पुत्र तो कहता है लेकिन उसके साथ ही यह भी कहता है कि : **'सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं/देखउँ करि बिचार मन माहीं।'** अपने भक्त के प्रति ऋणी होने वाला ईश्वर। भक्त पर निर्भर ईश्वर। यह वह भगवान भर नहीं है जो क्षमा करता है, नरक जाने से हमें बचाता है, जो हमारी अस्वच्छता को साफ करता है, हमारी विकृतियों को खत्म करता है बल्कि वह भगवान है जो प्रेम करता है और अपने भक्त के प्रेम के लिये ऋणी महसूस करता है। जोनाथन एडवर्ड्स (१७०३-१७५८) का एक प्रवचन है 'गॉड ग्लोरिफाइड इन मेन्स डिपेन्डेंस' कि आदमी की निर्भरता में ईश्वर की प्रतिष्ठा है। लेकिन क्या इससे ऐसा नहीं लगता कि खुद ईश्वर का एक बहुत बड़ा अहं है जो वह अपने सामने लोगों को टिकने ही नहीं देता, जो आदमी को हमेशा अपने कदमों तले झुकाए ही रखना चाहता है, जो मनुष्य को उसकी 'औकात' बताने में मजा लेता है! क्या 'प्रभु' की इसी अवधारणा से संप्रभु की अवधारणा पनपी और उसने दुनिया भर में राजतंत्रों, तानाशाहियों और अधिनायकों का समर्थन किया? भगवान की एक ऑटोक्रेटिक व्याख्या? भगवान के 'एब्सलूट रूल' (सम्पूर्ण शासन) की कहानी? वही 'टोटलिटेरियनिज्म' कि

ईश्वर हमारे जीवन के हर पहलू का नियंत्रण करता है। कि लोग अपने आपको सीमित परिवेश का 'छोटा भगवान' बनाना ही चाहते हैं और उधर सामने राम और हनुमान का वह आदर्श कि जहाँ राम हनुमान पर निर्भर हैं और हनुमान राम पर। यानि भक्ति का जो स्वरूप सुंदरकांड में सामने आता है, वह एकपक्षीय निर्भरता का नहीं है, अन्तर्निर्भरता का है। भक्ति के इस मॉडेल से उस तरह की 'मोनार्की' कभी निर्मित ही नहीं हो सकती जैसी पश्चिम के कुछ देशों में हुई। मसलन डेनमार्क-नार्वे में १६६५ में 'कांगोलोवेन' (राजा के कानून) बने जिसका दूसरा कानून ही यह प्रावधानित करता था : "The monarch shall from this day forth be revered and considered the most perfect and supreme person on the earth by all his subjects, standing above all human laws and having no judge above his person, neither in spiritual nor temporal matters, except God alone.' कि आज के दिन से सम्राट अपने समस्त प्रजाजनों द्वारा एक ईश्वर भर के अलावा सबसे पूर्ण और सबसे महत्ताशाली व्यक्ति के रूप में पूज्य और अधिमान्य समझा जायेगा, सभी मानवीय विधियों के ऊपर और स्वयं के ऊपर किसी न्यायाधीश के बिना। चाहे वह आध्यात्मिक मामले हों या सांसारिक। इस तरह का एकतंत्र निर्भरता और घुटने टेकने की उस वैचारिकता की ही परिणिति है। तुलसी ने इसकी जगह अन्तर्निर्भरता का भक्ति-प्रादर्श पेश किया। भक्त और भगवान के अन्योन्याश्रय का। एक दूसरे के प्रति उत्तरदायित्व का। एक तरह का पारस्पर्य। भक्त और भगवान का ऐक्य। 'जगद्भर्ताऽपि यो भिक्षुः भूतावासोडनिकेतनः' जो जगत का भरण करता है, परन्तु स्वयं भिक्षु है, सब प्राणियों का आवास है परन्तु स्वयं गृहहीन है - ऐसे भगवान का ही एक आयाम भक्त है। कई लोगों ने स्वावलम्बन को 'अंतिम' मूल्य की तरह प्रदर्शित किया है। स्वावलंबन की एक झलक पर न्यौछावर कुबेर का कोष। कई लोगों ने स्वायत्तता को एक श्रेष्ठतम जीवनादर्श के रूप में माना है। लेकिन तुलसी निर्भरां भक्ति में किसी तरह की एकांति या आत्म-रमण को उचित नहीं समझते। उनकी 'निर्भरां भक्ति' का अर्थ है सह-अनुभूति, ज्यादा परिचित अभिव्यक्ति है- सहानुभूति। उनकी भक्ति है अन्तर्सम्बन्ध। उनकी भक्ति है 'कनेक्शन'। उनकी भक्ति है सामाजिक। वह नियतियों का सम्मिलन है। वहाँ यह नहीं हो सकता कि भगवान बैकुंठ में बैठे रहें और गज को मगर पकड़ ले। वहाँ यह नहीं हो सकता कि 'यह अश्रु राम के' आते ही मन में (आते ही मन में विचार) हनुमान के दिल में उथल-पुथल न मच जाये। वहाँ भक्ति एक प्रशस्त मार्ग है, संकीर्ण नहीं। बुद्ध

> *निर्भरां भक्ति किसी तरह से भक्त मात्र का भगवान की ओर प्रयाण नहीं है बल्कि भगवान का भी भक्त की ओर खिंचाव है। वह भक्त का 'ईवोल्यूशन' (विकास) नहीं बल्कि भक्ति को एक 'इनवोल्यूशन' (वर्तन) की तरह पेश करना है। भक्ति एक तरह की लंबवत् गति नहीं है बल्कि वह चक्रीय है, भक्त भगवान के पीछे, भगवान भक्त के पीछे।*

का प्रतीत्य समुत्पाद और महावीर स्वामी का परस्परोपजीवनं का सिद्धांत भी इसी निर्भरा भक्ति के निकट है।

निर्भरां भक्ति किसी तरह से भक्त मात्र का भगवान की ओर प्रयाण नहीं है बल्कि भगवान का भी भक्त की ओर खिंचाव है। वह भक्त का 'ईवोल्यूशन' (विकास) नहीं बल्कि भक्ति को एक 'इनवोल्यूशन' (वर्तन) की तरह पेश करना है। भक्ति एक तरह की लंबवत् गति नहीं है बल्कि वह चक्रीय है, भक्त भगवान के पीछे, भगवान भक्त के पीछे। भक्त के 'पदार्थ' में भगवान के 'प्राण'। दोनों की अंतरंगता। हनुमान किसी पाप-प्रभावक्षेत्र (dominion of sin) में नहीं हैं कि जहाँ से भगवान उनको बाहर निकालते हों। फिर भी हनुमान की निर्भरां भक्ति ही यह कहलाती है : **'अस मैं अधम सखा सुनु मोहू पर रघुबीर'** और विभीषण भी 'सहज पापप्रिय तामस देहा' कहते हैं। दोनों को अपनी श्रेष्ठता का भरम नहीं है। दोनों अधम हुये बिना स्वयं को ऐसा समझते हैं क्योंकि दोनों को लगता है कि भगवान के बिना तो वे मात्र पदार्थ ही हैं। ईश्वर ही उन्हें 'रेडीम' करता है। ईश्वर न केवल उनकी सजीवनता है बल्कि उनकी पावनता भी है। भगवान पर

जब भक्ति अपनी पूर्णता पर पहुंचती है, उस क्षण वह उतनी उन्नत और उदात्त हो जाती है कि आराध्य से फर्क ही नहीं रह जाती। आराधक ही आराध्य हो जाता है। सम्पूर्ण विनम्रता ही सम्पूर्ण गौरव हो जाता है।

जितनी उनकी निर्भरता बढ़ती है, भगवान का भक्त के प्रति कंसर्न भी उतना ही बढ़ता जाता है। जब मलूकदास ने यह कहा था कि : **'अजगर करै न चाकरी पंछी करै न काम/दास मलूका कह गये सबके दाता राम'** : तो वे किसी तरह के आलस्य को नहीं उकसा रहे थे बल्कि वे भक्त द्वारा खुद को पूरी तरह भगवान के हवाले कर देने के एडवेंचर को बता रहे थे। सम्पूर्ण निर्भरता का एडवेंचर। तुलसी भी 'सोइ भरोस मोरें मन आवा' कहकर उसी निर्भरता को बताते हैं। **'तुलसी बिरबा बाग में सींचे से कुम्हिलाहिं/राम भरोसे जो रहहिं पर्वत पर हरिआहिं'।** यह कह देना जितना सरल है, इस भक्ति में जीवित रहना उतना ही कठिन। आदमी ईश्वर पर पूरा भरोसा कभी करता ही नहीं। कभी सेविंग्स करता है कैपिटल फार्मेशन के लिए- पूंजी निर्माण के लिए बचत। कभी धन जुटाने/लूटने की जुगत करता है। ईश्वर पर निर्भरता तो ठीक है, लेकिन अपने सुरक्षा उपाय तो करने ही होंगे। अब तुकाराम के उस अभंग की परवाह कौन करे जिसमें वे कहते हैं कि सर्वस्व न्यौछावर करने पर ही भक्ति की प्राप्ति होती है- **भक्तीची ते जाती ऐसी/सर्वस्वासी मुकावें।** निर्भरा भक्ति फिर अपने लिए कोई पृथक से रियायत नहीं मांगती, कोई अलग सिक्योरिटी नहीं। वह तो सम्पूर्ण है, विभक्त नहीं। विभक्ति है तो भक्ति नहीं है। अब निर्भरा भक्ति में तो सिर्फ **'एक भरोसो, एक बल, एक आस विस्वास'** वाली बात है- यहां संग्रह नहीं है। यहां परिग्रह भी नहीं है। बिहारी कहते थे कि **'कोऊ कोटिक संग्रहे/कोऊ लाख हजार/मो संपत्ति यदुपति सदा, बिपति बिदारनहार।'** इसी भावना से तुलसी ने **'जो हौं सो हौं राम को'** (कवितावली, उ.कां. १०७) कहा। इसी भावना से उन्होंने कवितावली में कहा : **'जागैं बुध विद्या हित पंडित चकित चित/जागैं लोभी लालच धरनि धन धाम के/जागैं भोगी भोग ही, वियोगी, रोगी सोग बस/सोवैं सुख तुलसी भरोसे एक राम के।'** निर्भरा भक्ति के अनूठे लाभ तुलसी गिनाते हैं और जागृति व तंद्रा के पूरे रूपक को इसी निर्भरा भक्ति के सहारे सिर के बल खड़ा कर देते हैं। वैराग्य संदीपनी के एक दोहे में वे निर्भरा भक्ति में निहित एकाग्रता और अनन्यता को सामने लाते हैं : **'एक भरोसो, एक बल, एक आस बिस्वास/राम-रूप स्वाती जलद, चातक तुलसी दास'** इसी निर्भरा भक्ति के सहारे वे एक सर्वथा मुक्त मनुष्य की तरह सत्ता को चुनौती देने लायक आत्मविश्वास जुटाते हैं : **'हम चाकर रघुबीर के पटौ लिख्यौ दरबार/तुलसी अब का होहिंगे नर के मनसबदार।'** कवि गंग ने तो इसी निर्भरा भक्ति के सहारे अकबर को चुनौती दे दी थी : **कवि गंग तो एक गोविंद भजै/कहुं संकन मानत जब्बर की/जिनको हरि की परतीति नहीं/सो करौ मिलि आस अकब्बर की।** इसलिए निर्भरा भक्ति से परावलंबन और पराश्रय को कोई प्रोत्साहन नहीं मिलता। बल्कि मुझे तो यह इतिहास का व्यंग्य नहीं, निर्भरा भक्ति का न्यायोचित परिपाक ही लगता है कि रामकथा के सभी चरित्रों में राम को छोड़कर सिर्फ हनुमान ही हैं- निर्भरा भक्ति के अप्रतिम आदर्श- जिन्होंने भारतीय जन मानस में अपनी स्वायत्त सत्ता विकसित की, जिनके स्वतंत्र मंदिर भारत के कोने-कोने में बन गए- यहां तक कि सीता और लक्ष्मण तक के भी स्वतंत्र मंदिर नहीं हैं, लेकिन गांवों-कूचों-मड़ई-चौराहों-हर कहीं बस गए। हनुमान जिस समय संपूर्णतः राम पर निर्भर हुए, उसी दिन वे सर्वथा स्वायत्त हो गए। जब भक्ति अपनी पूर्णता पर पहुंचती है, उस क्षण वह उतनी उन्नत और उदात्त हो जाती है कि आराध्य से फर्क ही नहीं रह जाती। आराधक ही आराध्य हो जाता है। सम्पूर्ण विनम्रता ही सम्पूर्ण गौरव हो जाता है।

निर्भरता की यह भक्ति किसी पृथकता (isolation), किसी स्व-अजनबीपन (self-estrangement), किसी शक्तिहीनता, किसी अर्थहीनता-बोध, किसी विलगाव (alienation) से भी मुक्त करती है। व्यक्तियों, समूहों एवं वर्गों के बीच जब खाइयां पैदा हो रही हों, जब व्यक्ति के भीतर एक अप्रामाणिक व्यक्ति पैदा हो गया हो, जब परिवर्तनों की तीव्रतम गति अनुकूलन की समस्या पैदा कर रही हो, जब आदमी लगातार किसी न किसी असमंजस में पड़ा हो, जब रिश्ते दिखावटी हों और बनावटी भी, जब आदमी को अविश्वास और उदासीनता की छायाएं घेर रही हों, जब श्रमिक अपने ही द्वारा उत्पादित वस्तु पर भी अपना बस नहीं महसूस कर पा रहा हो- न केवल उत्पादन की वस्तु पर बल्कि उसकी प्रक्रिया पर भी, जब एक तरह की शक्तिहीनता का अलगाव वाला अहसास उसके चेतन-अवचेतन पर हावी होता जाता हो, जब आदमी प्रकृति से भी कट गया हो- न उसे किसी बौर के या किसी कोंपल फूटने का इन्तजार हो, न फुरसत हो नदी के किनारे शांत मन से बैठने की- तब निर्भरा भक्ति के आदर्श उपयोगिता के उजास से हमें किसी नये तरह से भर जाते हैं।■

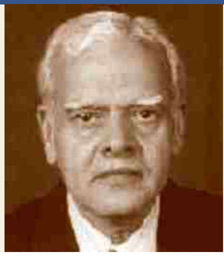

भूपेन्द्र कुमार दवे

जन्म : २१ जुलाई १९४१. शिक्षा : बी.ई. आनर्स, एफ.आई.ई., कहानी और कविताओं का आकाशवाणी से प्रसारण. प्रकाशित कृतियाँ : ३ खंड काव्य, १ उपन्यास, ५ काव्य संग्रह, २ गज़ल संग्रह, ७ कहानी संग्रह एवं २ लघुकथा संग्रह. मध्यप्रदेश विद्युत मंडल द्वारा कथा सम्मान. त्रिवेणी परिषद द्वारा उषा देवी मित्रा अलंकरण प्राप्त. संप्रति : भूतपूर्व कार्यपालन निदेशक, मध्यप्रदेश विद्युत मंडल.

सम्पर्क : b_k_dave@rediffmail.com

मंथन

अन्तरात्मा की भव्यता

THE GRANDEUR OF INNER SELF

PART 4

And therefore let me give you a heart strong enough and mind sharp enough so that you built a heaven on this earth.

और इसलिये मुझे तुम्हें इतना सुदृढ़ हृदय और इतना तेज मस्तिष्क देने दो कि तुम इस धरा पर स्वर्ग बना सको।

The death shall win for you the hell or heaven, which shall be exact replica of the hell or heaven that you create for this life of yours around you on this earth.

मृत्यु तुम्हारे लिये वही नरक या स्वर्ग जीत कर लायेगी जो तुम्हारे द्वारा अपनी इस जिन्दगी के लिये इस धरा पर बनाये गये नरक या स्वर्ग की अनुकृति होगी।

So let us join to built our heaven so that He remains with us till we breathe, for thereafter He shall carry us to the place where He abides.

अतः आओ, हम मिलकर अपना स्वर्ग बनायें ताकि वह हमारे साथ रहे जब तक हमारी साँस है क्योंकि उसके बाद वह हमें वहाँ ले जावेगा जहाँ वह स्वयं रहता है।

And therefore worry not for what hell or heaven the death shall win for you, but concentrate on the hell or heaven you create for our life around you on this earth.

और इसलिये, चिन्ता मत करो कि मृत्यु तुम्हारे लिये कौन-सा नरक या स्वर्ग जीत कर लायेगी, बल्कि ध्यान रखो उस नरक या स्वर्ग पर जो तुम अपनी जिन्दगी के लिये अपने चारों ओर इस धरा पर बना रहे हो।

How alike are heaven without God and hell without devil? How alike are earth and heaven where God makes His heavenly abode to live with us. How alike are earth and hell where devil makes his hell in our home in order to torture us all the time.

बिना ईश्वर के स्वर्ग और बिना शैतान के नरक कितने एक समान हैं? कितने एक समान यह धरा और स्वर्ग हैं जहाँ ईश्वर हमारे साथ रहने के लिये अपना दिव्य निवास बनाता है। कितने एक समान यह धरा और नरक हैं जहाँ शैतान हमें सदा पीड़ित करने के लिये हमारे घर में अपना नरक बनाता है।

But, man has choice; earth is his and he can make it a heaven or hell.

फिर भी मनुष्य के पास विकल्प है, पृथ्वी उसकी अपनी है और वह उसे नरक या स्वर्ग बना सकता है।

The best way to achieve heaven is to keep the hell away and therefore merge the mind in the innerself.

स्वर्ग को प्राप्त करने का सबसे अच्छा तरीका है कि नरक को दूर रखो और इसलिये मन को अंतरात्मा में एकीकृत करो।

Even if one does not believe in the existance of heaven and hell, he does create one (heaven or hell) at his home, in his society and around himself and on this earth.

यदि कोई स्वर्ग या नरक के विद्यमान होने में विश्वास नहीं करता है तो भी वह अपने घर, अपने समाज, अपने आस-पास और इस पृथ्वी पर एक (स्वर्ग या नरक) बना ही लेता है।

Even if one does not believe in the existance of

> ईश्वर हो या ना हो, पर
> उनके स्वरूप का ज्ञान
> होना जरूरी है ताकि
> हम जान सकें कि हम
> अपने आपको क्या
> बनाने में लगे हैं।

heaven and hell, he finds hell or heaven being created around him by others and even himself.

यदि कोई स्वर्ग या नरक के विद्यमान होने में विश्वास नहीं करता है तो भी वह अपने चारों ओर दूसरों के द्वारा और खुद के द्वारा बनाया स्वर्ग या नरक पाता है।

And since he does not believe in hell and heaven, he knows not what he is creating around himself.

और चूंकि वह स्वर्ग व नरक में विश्वास नहीं करता इसलिये वह नहीं जान पाता कि वह अपने इर्द-गिर्द क्या बना रहा है।

And since he does not believe in hell and heaven, he knows not what others are creating around him.

और चूंकि वह स्वर्ग व नरक में विश्वास नहीं करता इसलिये वह नहीं जान पाता कि दूसरे उसके इर्द-गिर्द क्या बना रहे हैं।

Heaven and hell may or may not exist, but it is essential to konw what they are, so that we may know what we are building for ourselves.

स्वर्ग व नरक हों या ना हों, पर उनका स्वरूप का ज्ञान होना जरूरी है ताकि हम जान सकें कि हम अपने लिये क्या बना रहे हैं।

Existance of God may or may not be, but it is essential to konw what He is, so that we may know what we are trying to become.

ईश्वर हो या ना हो, पर उनके स्वरूप का ज्ञान होना जरूरी है ताकि हम जान सकें कि हम अपने आपको क्या बनाने में लगे हैं। ■

क्रमशः

(Thus ended the fifth dialogue arising from meditation.)

60 MILLION

CHILDREN IN INDIA

have no means to go to school

Contribute just Rs. 2750*

and send one child to school

for a whole year

Central & General Query

info@smilefoundationindia.org

http://www.smilefoundationindia.org/contactus.htm

गर्भनाल द्वारा जनहित में जारी

पंचतंत्र कई दृष्टियों से संसार की सर्वाधिक लोकप्रिय कृतियों में से एक है। इसमें संकलित कहानियों का मूल उत्स लोक-जीवन है। भारतीय कृतियों में पंचतंत्र ऐसी अकेली रचना है, जिसे पूरी तरह ज्ञानकोश कहा जा सकता है। कथा प्रस्तुति की जो शैली इसमें प्रयुक्त है, उसकी एक लंबी परम्परा है। 'वेद', 'ब्राह्मण' आदि ग्रंथों में भी इस फैंटेसी का प्रयोग हुआ है।

ब्राह्मण ने राक्षस को छकाया

किसी वन में चंडकर्मा नाम का एक राक्षस रहता था। एक बार उसे वन में भटकता हुआ एक ब्राह्मण दिखाई पड़ गया। वह तुरत उसके कंधे पर सवार हो गया। इसके बाद उसने कहा, "चलो, आगे बढ़ो।"

ब्राह्मण बेचारा क्या करता। उसका तो डर से बुरा हाल हो रहा था। वह राक्षस को लादे हुए चलने लगा। कुछ दूर चलने के बाद उसने देखा कि राक्षस के पांव बहुत कोमल और सुंदर है। उसे पूछ दिया, "आपके पांव इतने कोमल कैसे हैं?"

राक्षस ने बताया कि उसने प्रतिज्ञा कर रखी है कि वह भीगे पांव से धरती का स्पर्श नहीं करेगा।

राक्षस की बात सुनकर अब ब्राह्मण अपने छुटकारे की जुगत सोचने लगा। राक्षस उसे एक तालाब के पास ले जा रहा था। जब ब्राह्मण तालाब के पास पहुंच गया तो राक्षस ने कहा, "मैं नहा धो कर देवताओं की पूजा करूंगा। जब तक मेरी पूजा पूरी न हो जाए तब तक तुम एक कदम भी आगे न बढ़ना।"

अब ब्राह्मण ने सोचा कि यह पूजा करने के बाद मेरा ही कलेवा करेगा। मुझे इसी समय भाग निकलना चाहिए। इस समय इसके पांव गीले रहेंगे इसलिए यह मेरा पीछा तो कर नहीं पायेगा।

यह सोचते ही ब्राह्मण वहां से नौ-दो-ग्यारह हो गया।

राक्षस ने ब्राह्मण को भागते हुए देख भी लिया पर उसने अपनी प्रतिज्ञा टूटने के डर से उसका पीछा नहीं किया।

यह कहानी सुनने के बाद रखवालों की बात राजा को भी जंच गई। उसने ब्राह्मण बुलवाये। उनसे बताया कि उसके एक ऐसी कन्या हुई है जिसके तीन स्तन है। उसने उनसे इस अशुभ के निवारण का कोई उपाय बताने को कहा।

ब्राह्मण बोले, "यदि किसी राजा की कन्या का कोई अंग न हो या कोई अंग अधिक हो तो उसका अपना चरित्र भी दूषित होता है और उसके पति की मृत्यु भी हो जाती है।"

फिर उन्होंने बताया कि इनमें भी तीन स्तनों वाली कन्या से तो और भी अनिष्ट हो जाता है। यदि ऐसी कन्या नजर भी आ जाए तो इससे पिता का नाश होते देर नहीं लगती।

ब्राह्मण जिस तरह की सलाह देने के लिये बुलाए जाते रहे हैं उस तरह की सलाह उन्होंने दे दी और कहा कि राजा उस कन्या को इस तरह रखे कि उस पर उसकी नजर न पड़ने पाए। यदि कोई इसके साथ विवाह करना चाहे तो उसके साथ इसका विवाह करके उसे राज्य से बाहर निकाल दिया जाए।

> राजा ने कहा, "रूप रंग या उम्र पर न जाओ। कोई अंधा हो या लंगड़ा, कोढ़ी हो या खंजा, जात हो या बेजात, काला हो या गोरा, जो भी उससे विवाह करना चाहता है उसके साथ विवाह कर दिया जायेगा, पर उसे मेरे राज्य से बाहर अवश्य जाना होगा।"

राजा ने ऐसा ही किया। उसको एक गुप्त स्थान में इस तरह छिपाकर रखा गया कि किसी भी सूरत में उस पर राजा की नजर न पड़ने पाए। कन्या धीरे-धीरे जवान होती गई। जब शादी की उम्र हुई तो राजा ने मुनादी फिरा दी कि जो कोई उसकी तीन स्तनों वाली कन्या से विवाह करेगा उसे एक लाख सोने की मुहरे दी जाएंगी पर इसके साथ ही उसे राज्य से बाहर भी निकाल दिया जायेगा।

राजा को मुनादी कराए बहुत दिन बीत गए पर कोई उस कन्या से विवाह करने के लिये बढ़कर नहीं आया। उसी नगर में एक अंधा रहता था। उसका एक सहायक था। उसका नाम था मंथरक। वह शरीर से कुबड़ा था। वह उसे अंधे की लाठी पकड़कर चलता था। उन दोनों ने राजा की मुनादी का समाचार सुना पर उस समय उनकी हिम्मत यह कहने की नहीं हुई कि उनमें से कोई उससे विवाह करना चाहता है। जब उन्होंने देखा कि इतने दिन बीत जाने के बाद भी कोई उस कन्या से विवाह के लिये तैयार नहीं हुआ तो उन्होंने सोचा कि

> कहते हैं कि जो एकमत होकर काम नहीं करते हैं उनका उसी तरह नाश हो जाता है जैसे भारुंड पक्षी का हुआ था जिसके पेट तो एक ही था पर मुंह दो थे और वह दोनों से खाता रहता था।

क्यों न हम एक बार चलकर अपना भाग्य आजमाएं और उस नगाड़े को छूकर अपना इरादा प्रकट कर दें। यदि राजा मान गया तो राजकुमारी के साथ एक लाख सोने की मुहरें मिल जाएंगी और पूरा जीवन आराम से कटेगा। यदि राजा सूनकर बिगड़ उठा तो अधिक से अधिक जान से मरवा देगा। इससे उन्हें अपने इस नरक जैसे जीवन से छुटकारा तो मिलेगा।

यह तय कर लेने के बाद अंधे ने उस कुबड़े के साथ जाकर नगाड़े को हाथ लगा दिया। यह नगाड़ा छूने का काम कुछ उसी तरह का था जैसे राजसभा में किसी काम का बीड़ा उठाने का होता है। नगाड़े को छूकर उसने कहा, "मैं राजकुमारी से विवाह करना चाहता हूं।"

राजा के सिपाहियों ने यह बात राजा को बता कर पूछा कि आप जैसी आज्ञा दे वैसा किया जाए।

राजा ने कहा, "रूप रंग या उम्र पर न जाओ। कोई अंधा हो या लंगड़ा, कोढ़ी हो या खंजा, जात हो या बेजात, काला हो या गोरा, जो भी उससे विवाह करना चाहता है उसके साथ विवाह कर दिया जायेगा, पर उसे मेरे राज्य से बाहर अवश्य जाना होगा।"

राजा की आज्ञा पाकर उन सिपाहियों ने नदी के किनारे ले जाकर उस अंधे के साथ उस कन्या का विवाह कर दिया। राजा की ओर से उसे एक लाख मुहरें दे दी गईं। फिर उसे नाव में बैठा कर मल्लाहों से कहा गया कि उसे राज्य से बाहर छोड़ आएं।

अब वे दूसरे देश में जाकर आराम से रहने लगे। अंधा तो दिन-रात मजे से चारपाई तोड़ता रहता। घर का सारा काम कुबड़े को संभालना पड़ता था। इस तरह कुछ दिनों के बाद राजकुमारी का उस कुबड़े मंधरक से लगाव पैदा हो गया। यह बात तो सारी दुनिया जानती है कि चाहे दुनिया उलट जाए पर कोई स्त्री सती हो ही नहीं सकती। फिर इस तीन स्तनों वाली कन्या के तो भाग्य में ही चरित्रहीन होना लिख दिया गया था।

एक दिन उस कन्या ने मंथरक से कहा, "यह अंधा हमारी राह का कांटा बना हुआ है। कहीं से जहर ले आओ और इसे पिलाकर ठंडा कर दिया जाए। फिर हम दोनों खुलकर मौज करें।"

अगले दिन जब मंथरक जहर की तलाश में निकला तो उसे एक काला नाग मिल गया। उसे लेकर वह खुश-खुश घर लौटा। उसने राजकुमारी से कहा, "प्रिये, इस काले नाग को काट कर मसाले के साथ पकाकर इस अंधे को खिला दो। इसे मछली खाने का बड़ा शौक है। चुपचाप खा लेगा और इसके साथ ही इसकी छुट्टी हो जायेगी।"

यह कहकर मंथरक कहीं बाहर चला गया। उस राजकुमारी ने सांप के टुकड़े किए और तेल भूनकर आग पर पकने को छोड़ दिया। इसी बीच उसे कोई काम आ पड़ा। उसने अंधे से कहा कि चूल्हे पर मछली पक रही है। वह उसके पास ही बैठ जाए और बीच-बीच में कलछी से चलाता रहे।

मछली का नाम सुनते ही अंधे की लार टपकने लगी। वह कलछी लेकर उसे चलाने लगा। चलाते समय सांप की जहरीली भाप उसकी आंखों में लगी तो इससे उसका मोतियाबिंद गलने लगा। भाप उसे बहुत अच्छी लग रही थी इसलिए उसने जमकर सिकाई की।

उसकी आँख खुली तो उसने देखा कि वहां तो मछली के स्थान पर सांप के टुकड़े पड़े हैं। उसकी समझ में न आए कि उसकी पत्नी ने इसे मछली बता कर चलाते रहने को क्यों कहा। उसने इसकी तह में जाने के लिये फिर अपने अंधा होने का बहाना किया और सांप को मछली मानकर उसमें कलछी घुमाने लगा।

इसी समय कुबड़ा बाहर से आया। उसने राजकुमारी को चूमना और उससे लिपटना शुरू कर दिया। और फिर इसके बाद तो कुछ बाकी रहना नहीं था।

अंधे को आया क्रोध। वह उठा और टटोलता हुआ उस चारपाई तक पहुंच गया। आसपास कोई हथियार नहीं मिला तो उसने कुबड़े को टांग से पकड़ा और पूरी ताकत लगा कर घुमा कर राजकुमारी की छाती में दे मारा। इस चोट के साथ ही राजकुमारी का तीसरा स्तन उसकी छाती में घुस गया। इस तरह घुमाए जाने के कारण जो झटका लगा उससे कुबड़े का कुबड़ापन भी ठीक हो गया।

अब यह भाग्य का खेल नहीं तो और क्या है। भाग्य साथ दे तो उल्टे काम के भी सीधे नतीजे निकलते हैं।

घनचक्कर की बात सुनकर सुवर्णसिद्धि बोला, "तुम्हारी बात यहां तक तो ठीक है कि आदमी को भले लोगों की बात मानकर ही चलना चाहिए। जो किसी की बात न मान कर मनमानी करता है उसकी दशा तुम्हारे जैसी होती है। कहते हैं कि जो एकमत होकर काम नहीं करते हैं उनका उसी तरह नाश हो जाता है जैसे भारुंड पक्षी का हुआ था जिसके पेट तो एक ही था पर मुंह दो थे और वह दोनों से खाता रहता था।"

घनचक्कर ने उसमें कहानी सुनाने का हठ किया।■

महर्षि वेद व्यास

वैदिककालीन ऋषि वेद व्यास की रचना महाभारत की गणना भारतीय साहित्य-भंडार के सर्वश्रेष्ठ महाग्रंथों में की जाती है। इसमें पांडवों की कथा के साथ अनेक सुन्दर उपकथाएँ हैं तथा बीच-बीच में सूक्तियाँ एवं उपदेशों के उज्ज्वल रत्न भी जुड़े हुए हैं। महाभारत एक विशाल महासागर है जिसमें अनमोल मोती और रत्न भरे पड़े हैं। रामायण और महाभारत भारतीय संस्कृति और धार्मिक विचार के मूल स्रोत माने जा सकते हैं।

भूरिश्रवा का वध

अर्जुन! देखो, वह तुम्हारा शिष्य और मित्र सात्यकि शत्रुओं की सेना तितर-बितर करता हुआ आ रहा है। रथ चलाते-चलाते श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा।

"माधव! युधिष्ठिर को छोड़कर सात्यकि का यहां चला आना मुझे ठीक नहीं जंचता। द्रोण तो उधर मौके की ताक में ही हैं। युधिष्ठिर की रक्षा का भार हमने सात्यकि को सौंपा था। उनकी रक्षा करने के बजाय उसे इस तरह यहां नहीं चले आना चाहिए था। अभी तक जयद्रथ का भी वध नहीं हो पाया है और उधर देखिये, भूरिश्रवा सात्यकि से भिड़ गया है। ऐसे समय धर्मराज ने सात्यकि को यहां भेजकर भारी भूल की।" अर्जुन ने चिंतित भाव से कहा।

श्रीकृष्ण को जन्म देने के लिये देवकी का अवतार हुआ था। देवकी के स्वयंवर के अवसर पर सोमदत्त और शिनि इन दो राजाओं में भारी युद्ध हुआ। वासुदेव की तरफ से शिनि ने सोमदत्त से लड़कर उसको परास्त कर दिया और देवकी को अपने रथ पर बिठाकर ले गये। उस दिन से लेकर शिनि और सोमदत्त में खानदानी बैर हो गया। यहां तक कि दोनों खानदान वाले सदा एक-दूसरे के प्राणों के प्यासे रहते थे।

सात्यकि शिनि का पोता था और भूरिश्रवा सोमदत्त का पुत्र था। इस कारण सात्यकि को देखते ही भूरिश्रवा ने उसे युद्ध के लिये ललकारा और बोला -

"शूरता के दर्प में भूले हुए सात्यकि, देखो! अभी तुम्हारी खबर लेता हूं। चिरकाल से तुमसे युद्ध करने की चाह मेरे मन में समाई हुई थी। आज तुम मेरे सामने पड़े हो। अब मेरी इच्छा पूरी होगी। राजा दशरथ के पुत्र लक्ष्मण के हाथों इंद्रजीत का जैसे वध हुआ, वैसे ही आज मेरे हाथों तुम्हारा वध होने वाला है। मृत्यु तुम्हारी बाट जोह रही है। जिन वीरों को तुमने मारा था उनकी विधवाएं आज प्रसन्न होंगी। चलो तो फिर लड़ ही लें।"

राजा दशरथ के पुत्र लक्ष्मण के हाथों इंद्रजीत का जैसे वध हुआ, वैसे ही आज मेरे हाथों तुम्हारा वध होने वाला है। मृत्यु तुम्हारी बाट जोह रही है। जिन वीरों को तुमने मारा था उनकी विधवाएं आज प्रसन्न होंगी।

यह सुन सात्यकि हंसा और बोला- "निरर्थक बातें बनाने से क्या फायदा? जिसे लड़ने से डर हो, उसे इस तरह का हौआ दिखाया जा सकता है। तुम व्यर्थ की बातें बनाना छोड़ो। युद्ध करके ही अपनी शूरता का परिचय दो। शरत्काल के मेघों की भांति केवल गरजना शूरों को विचलित नहीं करता।"

इस कहा-सुनी के बाद युद्ध शुरू हो गया और दोनों वीर

ज्योंही अर्जुन ने सात्यकि की ओर मुड़कर देखा तो पाया कि सात्यकि जमीन पर पड़ा था और भूरिश्रवा उसके शरीर को एक पांव से दबाकर और दाहिने हाथ में तलवार लेकर उस पर वार करने को उद्यत ही था। यह देख अर्जुन से न रहा गया।

एक-दूसरे पर शेरों की भांति टूट पड़े।

लड़ते-लड़ते सात्यकि और भूरिश्रवा के घोड़े मर गये, धनुष कट गये और रथ बेकार हो गये। इसके बाद दोनों वीर जमीन पर खड़े ढाल-तलवार लेकर एक-दूसरे पर भयानक वार करने लगे। दोनों ने अद्‌भुत पराक्रम का परिचय दिया। वे दोनों एक-दूसरे से बढ़कर थे। इसलिये एक मुहूर्त तक दोनों में खड्ग युद्ध होता रहा। बाद में दोनों की ढालें कट गईं। इस पर दोनों ने ढाल-तलवार फेंक दी और कुश्ती लड़ने लगे।

दोनों वीर एक-दूसरे से छाती भिड़ाते और गिर पड़ते। एक-दूसरे को कसकर पकड़ लेते और जमीन पर लोटने लगते। फिर अचानक उछलकर उठ खड़े होते और दुबारा एक-दूसरे को धक्का देकर गिरा देते। इसी तरह दोनों जन्म के बैरी बहुत देर तक समान युद्ध करते रहे।

उधर अर्जुन सिंधराज जयद्रथ के साथ युद्ध कर रहा था और उसका वध करने के मौके की तलाश में था।

"अर्जुन, सात्यकि बहुत थका-सा मालूम होता है। जान पड़ता है भूरिश्रवा सात्यकि को खत्म करके ही छोड़गा।" श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा। पर अर्जुन तो जयद्रथ से ही लड़ने में दत्त-चित्त था।

श्रीकृष्ण ने अर्जुन से दुबारा आग्रह करके कहा- "देखो, भूरिश्रवा ने जब सात्यकि को युद्ध के लिये ललकारा, तभी वह कौरव-सेना से लड़ते रहने के कारण थका हुआ था। इसलिये यह बराबरी का युद्ध नहीं है। पहले तुम्हें सात्यकि की सहायता के लिये जाना चाहिए। नहीं तो वह भूरिश्रवा के हाथों मारा जाता दीखता है।"

श्रीकृष्ण इस प्रकार कह ही रहे थे कि इतने में भूरिश्रवा ने सात्यकि को ऊपर उठाया और जमीन पर जोर से दे पटका। कौरव-सेना जोरों से कोलाहल कर उठी- "सात्यकि मारा गया।"

"अर्जुन, देखो! वृष्णि-कुल का सबसे प्रतापी और वीर सात्यकि जमीन पर असहाय-सा पड़ा है। जो तुम्हारे प्राण बचाने व तुम्हारी सहायता करने आया था, उसी की तुम्हारे सामने हत्या हो रही है। तुम्हारे देखते-ही-देखते, तुम्हारा मित्र अपने प्राण गंवाने वाला है।" श्रीकृष्ण ने अर्जुन को एक बार फिर आग्रह करके कहा।

अर्जुन ने देखा कि मैदान में मृत-से पड़े सात्यकि को भूरिश्रवा उसी तरह घसीट रहा है, जैसे सिंह हाथी को घसीट रहा हो। यह देख अर्जुन भारी असमंजस में पड़ गया। उसे कुछ सूझ न पड़ा कि क्या किया जाये।

वह श्रीकृष्ण से बोला- "कृष्ण, भूरिश्रवा मुझसे लड़ नहीं रहा है। दूसरे के साथ लड़ने वाले पर कैसे बाण चलाऊं? मेरा मन नहीं मानता। परंतु साथ ही जब मेरी खातिर सात्यकि प्राण गंवा रहा हो तब अपनी ही धुन में लड़ते रहना भी मुझसे नहीं होता।"

अर्जुन इस प्रकार श्रीकृष्ण से बातें कर ही रहे थे कि इतने में जयद्रथ के चलाये बाणों के समूह आकाश में छा गया। इस पर अर्जुन ने बातें करते-ही-करते जयद्रथ पर बाणों की बौछार जारी रखी। साथ-ही-साथ संकट में पड़े हुये सात्यकि की तरफ भी बार-बार देखता और खिन्न हो उठता था।

"पार्थ! कई वीरों से युद्ध करने के कारण थका हुआ सात्यकि अब निहत्था और निःसहाय होकर भूरिश्रवा के हाथों बुरी तरह फंसा हुआ है। तुमको इस प्रकार तटस्थ नहीं रहना चाहिए।" श्रीकृष्ण ने कहा।

ज्योंही अर्जुन ने सात्यकि की ओर मुड़कर देखा तो पाया कि सात्यकि जमीन पर पड़ा था और भूरिश्रवा उसके शरीर को एक पांव से दबाकर और दाहिने हाथ में तलवार लेकर उस पर वार करने को उद्यत ही था। यह देख अर्जुन से न रहा गया। उसने उसी क्षण भूरिश्रवा पर तानकर बाण चलाया। बाण लगते ही भूरिश्रवा का दाहिना हाथ कटकर तलवार समेत दूर जमीन पर जा गिरा।

हाथ कटे हुए भूरिश्रवा ने पीछे मुड़कर देखा तो क्रुद्ध होकर बोला- "अरे कुंती-पुत्र! मुझे तुमसे इसकी आशा नहीं थी कि ऐसा अवीरोचित काम करोगे। जब मैं दूसरे से लड़ रहा था और तुम्हारी तरफ देख भी नहीं रहा था, तब तुमने पीछे से मुझ पर बाण चलाकर हमला क्यों किया? तुम्हारे इस काम से इस बात का सबूत मिलता है कि आदमी पर संगति का असर पड़े बिना नहीं रह सकता। अर्जुन! जब भाई युधिष्ठिर तुमसे पूछेंगे कि जब तुमने वार किया तब भूरिश्रवा क्या कर रहा था, तब क्या उत्तर दोगे? अरे, ऐसा अधार्मिक और अन्यायपूर्ण युद्ध करना तुम्हें किसने सिखाया? पिता इन्द्र ने या आचार्य द्रोण ने या कृप ने? वह कौन-सा धर्म था जिसके अनुसार तुमने एक ऐसे व्यक्ति पर बाण चलाया जो न तुमसे लड़ रहा था, न तुम्हारी तरफ देख ही रहा था? नीच लोगों के

योग्य इस निकृष्ट कार्य को करके तुमने सुयश पर धब्बा लगा लिया है। मैं जानता हूं कि तुम स्वयं अपनी इच्छा से ऐसा काम करने पर उतारू नहीं हो सकते। जरूर कृष्ण ने इसके लिये तुमको उकसाया होगा। पर तुम तो क्षत्रिय हो! वीर हो! यह कृत्य तो तुम्हारे स्वभाव के विरुद्ध था? दूसरे से लड़ने वाले पर हथियार चलाना क्षत्रियोचित काम नहीं है। इसलिए दुष्ट कृष्ण की सलाह से तुमने ऐसा अधर्म क्यों किया?"

अपना हाथ कट जाने पर जब भूरिश्रवा ने इस प्रकार कृष्ण की निंदा की तो अर्जुन बोला-

"वृद्ध भूरिश्रवा! जवानी के साथ-साथ बुद्धि भी तो नहीं खो बैठे हो! युद्ध-धर्म का जब तुम्हें पूरा ज्ञान है, तो फिर मुझे और श्रीकृष्ण को क्यों धिक्कार रहे हो? सात्यकि मेरा मित्र है। मेरे लिये अपने प्राणों को हथेली पर रखकर यहां लड़ रहा था। तुमने मेरे दाहिने हाथ के समान प्रिय मित्र सात्यकि का वध करने की कोशिश की और वह भी उस समय, जबकि वह घायल और अचेत-सा होकर जमीन पर पड़ा हुआ था और कोई प्रतिरोध नहीं कर सकता था। यह मैं खड़े-खड़े कैसे देख सकता था? यदि मैं उसकी सहायता न करता तो मुझे नरक ही प्राप्त होता। तुम कहते हो श्रीकृष्ण की संगति के कारण मैं भले से बुरा बन गया। तो संसार में ऐसा कोई है, जो इस तरह बुरा बनना नहीं चाहता हो? मतिभ्रम हो जाने के कारण ही तुम ऐसी बकवास कर रहे हो। अनेक महारथियों के साथ अकेले लड़कर जब सात्यकि बिलकुल थका हुआ था, तब तुमने लड़कर उसे परास्त कर दिया, यह तो ठीक था। पर जब वह परास्त होकर जमीन पर निःशस्त्र पड़ा हुआ था, तब उस अवस्था में तुमने उसे तलवार से मारना चाहा; क्या यह धर्म था? जिसके हथियार टूट चुके थे, कवच नष्ट हो चुका था और जो इतना थका हुआ था कि जिसके लिये खड़ा रहना भी दूभर था, ऐसे मेरे कीमती बालक अभिमन्यु का वध होने पर तुम सभी लोगों ने विजयोत्सव मनाया था। तुम्ही बताओ कि ऐसा करना किस धर्म के अनुसार था?"

अर्जुन ने इस प्रकार मुंहतोड़ जवाब देने पर भूरिश्रवा चुपके से सात्यकि को छोड़ हट गया और अपने बायें हाथ से युद्ध के मैदान में शरों को फैलाकर और आसन जमाकर बैठ गया। उसने परमात्मा का ध्यान करके वहीं प्रायोपवेशन-आमरण अनशन शुरू कर दिया। यह देख सारी कौरव-सेना भूरिश्रवा की प्रशंसा करने लगी और अर्जुन और कृष्ण की निंदा करने लगी।

यह सब देखकर अर्जुन बोला- "वीरों! तुम सब मेरी प्रतिज्ञा जानते हो। मेरे बाणों की पहुंच तक अपने किसी भी मित्र या साथी का शत्रु के हाथों वध न होने देने का प्रण मैंने कर रखा है। इसलिये सात्यकि की रक्षा करने मेरा धर्म था। किसी का धर्म जाने बिना उसकी निंदा करना उचित नहीं।"

> *भूरिश्रवा के वध की कहानी, महाभारत की उन कहानियों में से है जिसमें दुविधात्मक समस्याएं हल होती हैं। जहां ईर्ष्या-द्वेष का बोलबाला हो वहां धर्म और अनुशासन नाममात्र के लिये भी नहीं रहते।*

उसके बाद अर्जुन भूरिश्रवा से बोला- "पुरुष श्रेष्ठ! आश्रितों का भय दूर करके उनको शरण देने वाले वीर! तुमने कुकर्म का यह फल पाया है। इसके लिये मेरी निंदा करना व्यर्थ है। निंदा तो हम सबको क्षत्रियधर्म की करनी चाहिए जो इस सभी अनर्थों की जड़ है।"

अर्जुन की यह बातें सुनकर भूरिश्रवा ने भी शांति से सिर नवाया और जमीन पर टेक दिया।

इन बातों में कोई दो घड़ी का समय बीत गया था। सात्यकि की भी थकान मिट चुकी थी और वह तरोताजा हो गया था। भूरिश्रवा के हाथों हुए अपमान के कारण क्रोध से वह अंधा हो गया। उसने आव देखा न ताव, तलवार लेकर भूरिश्रवा की ओर, जो आंखें बंद किये और आसन जमाये ध्यान में लीन बैठा था, झपटा। सात्यकि को झपटता देख सारी कौरव-सेना में हाहाकार मच गया। अर्जुन और श्रीकृष्ण चिल्ला-चिल्लाकर कह रहे थे कि 'ऐसा न करो, ऐसा न करो!' सब लोगों के मना करते हुये भी सात्यकि ने भूरिश्रवा का सिर धड़ से अलग कर दिया। वृद्ध भूरिश्रवा स्वर्ग सिधार गया।

सिद्धों और देवताओं ने भूरिश्रवा का यश गाया। सात्यकि के कार्य को सबसे निकृष्ठ कहकर धिक्कारा। सबके मन में भूरिश्रवा की मृत्यु के कारण उदासी छा गई। सात्यकि ने निंद्यकर्म पर सबको असीम घृणा हुई।

सात्यकि ने कहा- "भूरिश्रवा मेरा खानदानी शत्रु था और जब मैं युद्ध के मैदान में अधमरा पड़ा था, तब उसने मेरी हत्या करने की कोशिश की थी। इसलिये मैंने जो उसका वध किया वह उचित था।" पर उसका यह समाधान किसी को ठीक नहीं जंचा। लड़ाई के मैदान में जिस ढंग से भूरिश्रवा का वध हुआ, उसे किसी ने भी उचित नहीं माना।

भूरिश्रवा के वध की कहानी, महाभारत की उन कहानियों में से है जिसमें दुविधात्मक समस्याएं हल होती हैं। जहां ईर्ष्या-द्वेष का बोलबाला हो वहां धर्म और अनुशासन नाममात्र के लिये भी नहीं रहते।■

प्रभुदयाल मिश्र

ग्राम बर्माडांग, जिला टीकमगढ़ मध्यप्रदेश में जन्म. सागर विश्वविद्यालय से अंग्रेजी साहित्य में एम.ए. महर्षि महेश योगी के साथ आध्यात्मिक पुनरुत्थान आन्दोलन के सिलसिले में संपूर्ण भारत यात्रा. मध्य एशिया के तजाकिस्तान और उजवेगिस्तान गणराज्यों में गीता और भारतीय योग पर व्याख्यान. विभिन्न आध्यात्मिक एवं साहित्यिक संस्थाओं से सम्बद्ध. प्रकाशित कृतियां : सौंदर्यलहरी काव्यानुवाद, सबके लिए गीता, उत्तर पथ, मैत्रेयी, वेद की कविता (वैदिक सूक्तों का काव्यान्तर), वेद की कहानियाँ, तंत्र दृष्टि और सौन्दर्य सृष्टि, योग के सात आध्यात्मिक नियम, ईश्वर का घर है संसार. सम्मान : मध्यप्रदेश संस्कृत अकादेमी द्वारा 'व्यास सम्मान', मध्यप्रदेश लेखक संघ द्वारा 'पुष्कर सम्मान', पेंग्विन पब्लिशिंग हाउस द्वारा 'भारत एक्सीलेन्सी एवार्ड', वीरेन्द्र केशव साहित्य परिषद् द्वारा 'महाकवि केशव सम्मान'. सम्प्रति : अध्यक्ष, महर्षि अगस्त्य वैदिक संस्थानम्, भोपाल.

सम्पर्क : ३५, ईडन गार्डन, राजा भोज मार्ग, भोपाल-४६२०१६ ईमेल : prabhu.d.mishra@gmail.com, www.vishwatm.com

अस्यवामीय सूक्त

(ऋग्वेद मंडल-१ सूक्त १६४)

पंचपादम् पितरं द्वादशाकृतिं दिव आहुः परे अर्धे पुरीशिणम्
अथेमे अन्य उपरे विचक्षणं सप्तचक्रे षडरे आहुरर्पितम्।१२।

पांच हैं उस पिता के पैर
बारह रूप
गगन में जो दूर है उस ओर कहलाता
अरों छः, सात चक्रों से बने रथ में
अवस्थित वह
बताते अन्य उसको हैं।

पंचारि चक्रे परिवर्तमाने तस्मिन्ना तस्थुर्भुवनानि विश्वा
तस्य नाक्षस्तप्यते भूरिभारः सनादेव न शीर्यते सनाभिः।१३।

सभी संसार उसमें हैं
अरे हैं पांच उस स्यंदन
बहुत है बोझ उस पर
किन्तु उसका अक्ष होता उष्ण फिर भी न कभी
अक्षत, वह सदा
चलता निरन्तर है।

सनेमि चक्रमजरं वि वावृत उत्तानायाम् दश युक्ता वहन्ति
सूर्यस्य चक्षु रजसैत्यावृतम् तस्मिन्नार्पिता भुवनानि विश्वा।१४।

अजर, अक्षत धुरी पहिए की
बराबर घूमती रहती
अश्व दश इसमें जुते
रथ खींचते रहते सदा उस सूर्य का
आंख जिसकी भुवन भासित
लोक, भव, संसार
जिस पर आश्रित, संस्थित।

साकंजानां सप्तथमाहुरेकजम् षट् यत् यामा ऋषयो देवजा इति
तेषामिश्टानि विहितानि धामशः स्थात्रे रेजन्ते विकृतानि रूपशः।१५।

सात जो उत्पन्न थे सब साथ
हैं पैदा हुए उस एक से
छः युग्म
वे ऋषि, देवज्ञ
करते हैं यजन
जो भिन्न
पर हैं एक स्वामी के सदा अनुचर।

स्त्रियः सतीस्ताम् उ में पुंस आहुः पश्यदक्षन्वान्न वि चेतदन्धः
कविर्यः पुत्रः स ईमा चिकेत यस्ता विजानात् स पितुश्पितासत्।१६।

पुरुष ही हैं नारियां
यह कहा मुझसे गया है
आंख वाला देख सकता
किन्तु अन्धा जान सकता यह नहीं
पुत्र जो ज्ञानी
इसे फिर जान सकता
जानकर जो पिता का भी पिता हो जाता!

अवः परेण पर एनावारेण पदा वत्सं बिभ्रती गौरुदस्थात्
सा कद्रीची कम् स्विदर्ध परागात् क्व स्वित् सूते नहि यूथे अन्तः।१७।

धेनु वह द्युलोक के नीचे
किन्तु ऊपर भूमि के सुस्थित
पांव से साधे हुए निज वत्स
जाती कहां है
प्रस्थान उद्यत, किस दिशा
वत्स जनती
भीड़ से इतनी अलग!■

परेश दत्त द्वारी

संगीत-कलाकार। कृतियाँ गीत-गुंजन, तरुण-संगीत-गुंजन, संगीत-कला, सुर-संगीत, मसीह-संगीत-साधना तथा विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित। सर्वश्रेष्ठ-शिक्षक पुरस्कार, श्रेष्ठ-शिक्षक-पुरस्कार, बिरसा मुंडा-ज्योति-सम्मान एवं झारखण्ड-रत्न से सम्मानित। सम्प्रति - संगीत-शिक्षक, हाई स्कूल, राँची, झारखण्ड।

सम्पर्क : pareshdutt@gmail.com

गीता-गीत

कर्मयोग

खंड-३

ज्ञानवान जो है आसक्त नहीं होता है वही कभी
पृथक आत्मा कर्म देखता नहीं हुआ है भ्रमित कभी।

इसीलिए हे अर्जुन! तू भी सब मुझमें कर दे अर्पण
आशा-ममता रहित युद्ध कर बनूँ तुम्हारा मैं दर्पण।

जो मानव मेरे मत का करते रहते हैं अभिनन्दन
छूटते हैं उनके सारे कर्मों के अनजाने बंधन।

कर्म सभी करते हैं प्राणी निज-स्वभाव के ही वश में
किन्तु श्रेष्ठ है वह मानव जो ना हो राग-द्वेष वश में।

धर्म हुआ अपना तो मरना भी हो जाता है अच्छा
अपनाना परधर्म को कभी किन्तु नहीं होता अच्छा।

अर्जुन ने पूछा मानव क्यों रहता पापों में खोकर?
करता है अनचाहे कर्मों को किनसे प्रेरित होकर?

श्याम ने कहा रजगुण से उत्पन्न हुआ है जैसा काम
वही क्रोध है खानेवाला इसको ही तू वैरी जान।

धुआँ से दहन और मैल से ज्यों दर्पण ढँक जाते हैं
वैसे ही जानो तुम उससे सभी ज्ञान ढँक जाते हैं।

बुद्धि, इन्द्रियाँ, मन विकार के सभी काम के हैं आवास
ये आच्छादित करें ज्ञान को प्राणी बन जाता है दास।

इसीलिए कहता हूँ पहले उसी काम को अर्जुन! मार
बुद्धि सहारे मन वश में कर फिर कर तू इसका संहार।

दीन हुई यह काया तो इन्द्रियाँ हुईं इससे ऊँची
इन्द्रियों से भी मन ऊँचा है बुद्धि हुई उससे ऊँची।

श्रेष्ठ आत्मा हुई बुद्धि से तू निज को पहले सम्भाल
सबसे पहले कामरूप दुश्मन को अर्जुन! मार डाल।

■

तीसरा खंड 'कर्मयोग' समाप्त

विजय निकोर

दिसम्बर १९४१ में लाहौर में जन्म। १९४७ के बँटवारे में दिल्ली आये। १९६५ से अमेरिका में निवास। हिन्दी और अंग्रेज़ी में अनेक रचनाएँ विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित। कवि सम्मेलनों में नियमित रूप से भाग लेते हैं।

सम्पर्क : vijay3@comcast.net

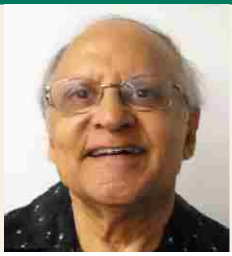

स्वप्न विलक्षण

स्मृतियों की सुखद फुहारें
झिलमिलाती चाँदनी
की किरणों की झालरें
अनन्त तारिकाएँ
सपने में और सपने में साक्षात
तुम... कब से

पूनों में, अमावस में, मध्य-रात्रि के सूने में
इस एक सपने से तुमने, मुझसे
रखा है अविरल अटूट संबंध
वरना स्मृति-पटल पर चन्द्र-किरण-सा
कभी प्रकाश-दीप-सा तैरता
यूँ लौट-लौट न आता...

मेरे अधबनेपन का बिखराव
चेहरे पर अतीत का रुँधा हुआ उच्छवास
इस पर भी भावों का भावों से मेल
इतनी आत्मीयता सपने में?
अभाव? कैसा, किसका अभाव?
तुम्हारा? नहीं, कभी नहीं

ज़िन्दगी के तंग तहखानों से
गुज़रती कोई रोशनी, देखता हूँ
उद्दीप्त सपने में प्रज्ज्वलित
कल्पना की दीप्ति
प्रकाश-वर्षा-सी
तुम... दीप्तिमान रत्न

उमड़ते स्नेह का मिठास आँखो में
मनमंदिर में तुम्हारे स्नेह-अक्षर
जैसे हँसते हुए फूलों के पराग-स्तर
प्रकाश-पर्व के बाद भी हर वर्ष
दो नयन तुम्हारे, दो नयन हमारे
यह अनमोल दिए मुस्कराते रहे

स्मृतियों की सुखद फुहारें
सपने में, सपने में तुम
कब से...

■

अनिल के. प्रसाद

हथुआ, बिहार में जन्म. अँग्रेजी साहित्य में बी.ए. (ऑनर्स), एम.ए. एवं यू.जी.सी. के अंतर्गत पी.एच.डी. साहित्य अकादमी के लिए यशपाल के 'झूठा सच' के कुछ अंशों का अँग्रेजी में अनुवाद. भारत, मिडिल ईस्ट, अमेरिका, चाइना, कनाडा एवं ऑस्ट्रिया में आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में पेपर एवं कविता पाठ. अंग्रेजी और हिंदी में लेखन. यमन, लीबिया, पटना एवं मुंबई के विश्वविद्यालयों में अध्यापन. सम्प्रति: सलमान बिन अब्दुलअज़ीज़ विश्वविद्यालय, सऊदी अरेबिया में अंग्रेजी भाषा एवं साहित्य के प्रोफेसर.

सम्पर्क : bunulaniljyo@gmail.com

कविता

प्रार्थना

पहले भी ऋषियों के
हिमालय जाकर तपस्या
करने की कहानियाँ
हमने बड़ों से सुनी थी

जो घर-संसार त्याग कर
अपने आध्यात्मिक ज्ञान-धन
को पाने के लिए हिमालय
की कंदराओं में जा बसते थे

हम भी तो आज ज़हरातेखलीज
की इन गुफाओं में उन्हीं साधुओं
की तरह साधना में लीन हैं
घर-संसार त्याग कर

मौनव्रती आत्मलीन हैं हम
तुम्हारे नाम की माला भी
फेरने की आदत है हमें
जो हमारे गृहस्थ जीवन की देन है
सोते-जागते दिनारो की मीनारों को
देखते रहते हैं, नापते रहते हैं
उनकी ऊँचाइयों को,
क्या हिमालय की चोटियों से भी
ऊँचा चढ़ पायेंगे हम?

बना पायेंगे एक ढेर
जिस पर बैठ कर हमारी
तपस्या सफल हो जाएगी?

हमारे दोनों हाथ अर्थ से
भरे होंगे, हर्ष से भरा होगा
हमारा जीवन, उत्कर्ष होगा
हमारे और हमारे घर-संसार का!

यही सोच कर हमने
इस नए युग की सधुक्कड़ी जीवन को
अपनाया था इस डर से
कि अर्थहीन जीवन, जीवन को
अर्थहीन न कर दे
उन हिमालयगामी ऋषियों
की तरह हमने भी एक राह पकड़ी
इस जीवन को सार्थक बनाने के लिए
जीवन के अर्थ को अर्थ से समझने के लिए।

हे ईश्वर, तुमसे हमारी
बस एक ही प्रार्थना है-
आज के युग के इस
अर्थ-आध्यात्म के नए आयाम से
मेरे हृदय और जीवन को
अर्थहीन होने से बचाना।

बस इतनी सी कृपा करना
हम पर क्योंकि हम भी
ज़हारातेखालीज की इन गुफाओं में
उन साधुओं की तरह
जीवन-अर्थ की साधना में लीन हैं
घर-संसार त्याग कर!

दिन-रात दिनारो की मीनारों
के चमकते सोने की ईंटों को
गिना करते हैं, सोते-जागते
हे दयावन्त! बस इतनी सी दया करना
कि उस राजा की तरह
न बन जायें हम
जिसके छूने मात्र से मनुष्य भी
संवेदना शून्य धातु में
बदल जाता था।

हे ईश्वर, बस तुमसे एक ही
विनती है तुमने हमें
मानव जीवन दिया है और
मानव ही बने रहने देना -
आध्यात्मिक संभावनाओं का मानव!■

शकुन्तला बहादुर

अनंतचतुर्दशी १९३४ को लखनऊ में जन्म. एम.ए. (संस्कृत) में सर्वाधिक अंकों का पदक हासिल किया. जर्मन एकेडेमिक एक्सचेंज सर्विस की फ़ेलोशिप पर जर्मनी में दो वर्षों तक शोधकार्य. ट्यूबिंगेन विश्वविद्यालय में ही संस्कृत एवं हिन्दी का अध्यापन. महिला महाविद्यालय लखनऊ में संस्कृत प्रवक्ता. विभागाध्यक्ष एवं प्रधानाचार्या के पदों पर कुल ३६ वर्षों तक कार्य करते हुए सेवानिवृत्त. योरोप तथा अमेरिका की साहित्यिक-गोष्ठियों में भाग लेते हुए अनेक देशों का भ्रमण. विगत १५ वर्षों से कैलिफ़ोर्निया, अमेरिका में निवास. प्रकाशित कृतियाँ : 'मृगतृष्णा' एवं 'बिखरी पंखुरियाँ' - काव्यसंग्रह, 'विविधा' - ललित निबन्ध-संग्रह, 'सुधियों की लहरें' - लेख एवं संस्मरण. सम्पर्क : shakunbahadur@yahoo.com

कविता

तितली-कुंज
Butterfly Grove

एक संस्मरण

लो आ गए हम
कैलिफ़ोर्निया में 'पिस्मो बीच' पर
तितलियों के कुंज में।
यहाँ
दूर दूर तक
जहाँ तक भी दृष्टि जाती है
उड़ रहीं हैं, दस-पाँच नहीं
सौ-हज़ार या लाखों करोड़ों भी नहीं
अनगिनत हैं तितलियाँ
पीले और काले रंग की
मनमोहक सी ये तितलियाँ।
ऊँचे संतरी से खड़े
यूक्लिप्टिस के सघन पेड़ों पर-
शाखाओं की पतली टहनियों पर-
पत्तों पर और सभी कहीं
कुछ शान्त स्थिर सी
कुछ पंख फड़फड़ाती सी
क्षण में उड़ जातीं
फिर दूसरे ही क्षण कहीं बैठ जातीं
कुछ क्षणों को बैठतीं मिल
मानो सभा सी कर रहीं
प्यार के दो शब्द कहकर
फिर उड़ानें भर रहीं।

कब तक उड़ेंगी? किस दिशा में जाएँगी?
जाने बिना ही उड़ रहीं।
तितलियों की बारात सी है जा रही
और सबका मन प्रफुल्लित कर रहीं।
झूमतीं मदमस्त सी ये तितलियाँ।

आँखों के सामने से-
एकदम निकट से, छूती हुई सी
उड़ती हुई दूर चली जाती हैं।
आँखें अचरज से निहारती रह जाती हैं
ये अनेकों तितलियाँ।

दाएँ-बाएँ, ऊपर-नीचे
पूरब-पश्चिम और उत्तर-दक्षिण में
सब ओर तितलियाँ ही तितलियाँ।
आकाश में उड़ती दिखती हैं
पृथ्वी पर आती और जाती हैं
उन्हें किसी का डर नहीं
ये स्वतंत्र हैं यहाँ।
सचमुच अपने नाम को
सार्थक सिद्ध करती हुई
ये 'मोनार्क' ही हैं इस क्षेत्र की
हैं राज करती तितलियाँ।

कितनी होंगी भला?
आकाश के अनगिनत तारों को
क्या कभी कोई गिन पाया है?
लगता है, हर पल बढ़ती भारत की आबादी से
ये होड़ करतीं तितलियाँ।
लग रहा ज्यों कुम्भ में स्नान करने जा रहीं
या चुनावी रैलियों से हैं स्पर्धा कर रहीं
दर्शकों को हैं लुभातीं निरन्तर ये तितलियाँ।

कभी लगता कि मानव-मन में उठतीं
प्रतिपल नित नवीन आकांक्षाओं के अम्बार सी
या फिर सागर की निरन्तर उठती
ऊँची-नीची अगणित हिलोरों सी
पर्यटकों को दूर से आकृष्ट कर मोहती सी
अपनी छोटी सी ज़िंदगी में-
सतत गतिशील, उड़ान भरतीं
आनन्दित सा करतीं ये तितलियाँ।

ये अचानक क्या हुआ?
ये झुंड के झुंड सघनता से
उड़ चले अंतरिक्ष में।
टिड्डियों के दलों सी ये तितलियाँ।
हिमपात में जैसे बरफ़ के फाए
समग्रता से दृष्टि को ढक लें
ठीक वैसे ही दृष्टि को ढकतीं
उड़ती हुई रंगीन सी ये तितलियाँ।

इस अनोखे दृश्य से, सौंदर्य से
प्रकृति के विचित्र करिश्मे से
प्राप्त हुए आनन्द के ये क्षण
कभी न भूलने वाली मधुर-स्मृतियों के
काफ़िले बन जाएँगे।
और जीवन में बार-बार
मन को हर्ष-विभोर कर जाएँगे।
■

ललिता प्रदीप

गोंडा, उत्तरप्रदेश में जन्म। लखनऊ विश्वविद्यालय से अंग्रेजी साहित्य में एम.ए.। उत्तरप्रदेश की प्रशासनिक सेवा की अधिकारी। कविता लिखने के अलावा यात्रा एवं फोटोग्राफी में विशेष रुचि। सम्प्रति - जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान, लखनऊ में प्राचार्य।

सम्पर्क : lalitapradeep@yahoo.com

कविता

पिता कभी नहीं मरते

क्या यह सच है कि
पिता कभी नहीं मरते

पिता पांच सौ वर्ष पुराने
वटवृक्ष की तरह होते हैं
उनकी जड़ें हमारी नसों के
रेशे-रेशे में फैली होती हैं
स्थाई होती हैं
वो हमारी रक्त की एक-एक बूँद में होते हैं
वो न होकर भी हमारे आसपास होते हैं
वो होते हैं हमारे विश्वास में
हमारी आस्थाओं में
वो होते हैं हमारे दैनिक आचार-विचार में।

पिता ज़िंदा होते हैं
हमारी बहुत सारी उन आदतों में
जिन्हें हम देख पाते हैं खुद पिता होकर
पिता हमारे नैन-नक्श में भी
कुछ ऐसे होते हैं कि हर सुबह आइने में
हमारे अंदर से
प्यार से झांकते हैं और मुस्करा कर कहते हैं
"मैं यहीं हूँ
बिलकुल तुम्हारे अंदर
तुम्हारा अपना!"

मैं देख पाती हूँ
अपने पिता को अनगिनत बार
अपने में
सच है
पिता सदैव जीवित रहते हैं
पिता कभी नहीं मरते!
■

नीरज गोस्वामी

अगस्त १९५० को जम्मू में जन्म। अंतरजाल की लगभग सभी प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में ग़ज़लें प्रकाशित। पेशे से इंजीनियर। अनेक विदेश यात्राएं कर चुके हैं। सम्प्रति - भूषण स्टील मुंबई में वाइस प्रेसिडेंट के पद पर कार्यरत.

सम्पर्क : neeraj1950@gmail.com

भीड़ में है मगर अकेला है

तिरी तलब की ये रातें, ये ख़्वाब कैसे हैं
कि रोज़ नींद में हम तितलियाँ पकड़ने लगे

नींद में तितलियाँ पकड़ने वाले शायर मरहूम जनाब मख्मूर सईदी साहब की एक निहायत छोटी लेकिन लाजवाब शायरी की किताब 'घर कहीं गुम हो गया' वाग्देवी प्रकाशन और नन्द किशोरे आचार्य साहब ने छापी है। मशहूर शायर जनाब शीन काफ़ निज़ाम साहब की मदद से पहली बार मख्मूर साहब का लाजवाब कलाम हिंदी पाठकों तक पहुँचा है।

कितनी दीवारें उठी हैं एक घर के दर्मियां
घर कहीं ग़ुम हो गया दीवारो-दर के दर्मिया
वार वो करते रहेंगे, ज़ख्म हम खाते रहें
है यही रिश्ता पुराना, संगो-सर के दर्मियां
बस्तियां 'मख्मूर' यूँ उजड़ी कि सेहरा हो गयीं
फासिले बढ़ने लगे जब घर से घर के दर्मिया

सुलतान मोहम्मद खां, मख्मूर सईदी टोंक राजस्थान में पैदा हुए और ३ मार्च २०१० की शाम जयपुर में लम्बी बीमारी झेलते हुए इस दुनिया-ऐ-फानी से रुखसत हो गए। मख्मूर साहब ने शायरी इबादत की तरह की, किसी ओहदे या मकबूलियत को हासिल करने के लिए नहीं। उन्हें पढ़ते सुनते देख कर ऐसा लगता था जैसे कोई फकीर खुदा को पुकार रहा है। अपने दौर के शायरों में उनकी अलग पहचान थी :

भीड़ में है मगर अकेला है
उसका कद दूसरों से ऊंचा है
अपने अपने दुखों की दुनिया में
मैं भी तनहा हूँ वो भी तनहा है
खुद से मिल कर बहुत उदास था आज
वो जो हंस हंस के सबसे मिलता है

मख्मूर साहब को साहित्य अकादमी के अलावा उत्तर प्रदेश, बिहार, बंगाल, दिल्ली और राजस्थान की उर्दू अकादमियों ने भी सम्मानित किया। देशभर में होने वाले मुशायरों के अलावा उन्होंने अमेरिका, पाकिस्तान, दुबई, आबुधाबी की भी यात्रा की और उर्दू शायरी के चाहने वालों को अपने अशआरों से नवाज़ा।

न रस्ता न कोई डगर है यहाँ
मगर सबकी किस्मत सफ़र है यहाँ
जबां पर जिसे कोई लाता नहीं
उसी लफ्ज़ का सबको डर है यहाँ

'घर कहीं ग़ुम हो गया' किताब एक गुटके की तरह है जिसे आप आसानी से अपनी जेब में रख सकते हैं और जब जरूरत पड़े पढ़ कर अपनी रूह को सुकून पहुंचा सकते हैं। इस किताब में उनकी लगभग पचपन ग़ज़लों के अलावा सत्तर के करीब नज्में भी संकलित हैं।

> मख्मूर साहब की शायरी आधुनिक है लेकिन आधुनिकतावादी नहीं है, वो परंपरा को अपने में उपजाती है, पर परम्परावादी नहीं है, वह सामाजिक आत्मीयता के गहरे अनुभव से गुज़रती है, पर प्रगतिवादी नहीं है. इसीलिए वो सीधे अपने अन्दर के पाठक को संबोधित है न कि किसी आलोचना समुदाय को।

'गागर में सागर' वाले कथन को अगर प्रत्यक्ष में अनुभव करना हो तो इस किताब को पढ़ें। पच्चीस रुपये कीमत की इस किताब की प्राप्ति के लिए वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर को vagdevibooks@gmail.com पर सम्पर्क करें।

कहीं पे ग़म तो कहीं पर ख़ुशी अधूरी है
मुझे मिली है जो दुनिया बड़ी अधूरी है
अगर कोई तिरी दीवानगी पे हँसता है
तो ग़ालिबन तिरी दीवानगी अधूरी है
हमारे बीच अभी आया नहीं कोई दुश्मन
अभी ये तिरी मिरी दोस्ती अधूरी है। ■

रमेश जोशी के आलेख 'मोटापा : एक बाजार निर्मित समस्या' में वर्तमान बाजारवाद का असली चेहरा बहुत तार्किक ढंग से दिखाया गया है। इसकी हानिकारक भूमिका को और इसके विरुद्ध भारतीय लाइफ स्टाइल की प्रासंगिकता को बहुत अच्छे से विश्लेषित भी किया गया है।

जनवरी २०१४ का गर्भनाल अंक ३१ दिसम्बर को मिला संपादक की कर्मठता ही प्रशंसा करना ही पड़ेगी। आख़िरी बात में आपने बात को चटाखेदार भाषा में प्रस्तुत किया है कि पुरुष अपनी तरक्की में जिस जुगाड़ का सहारा लेता है उसी युक्ति का सहारा यदि स्त्री लेती है तो उसकी आलोचना होती है जिसे आपने स्त्री विरोधी मानकर बांग्ला लेखिका की कविता के जो अंश प्रस्तुत किए हैं उसमें शुरू की आधी कविता ही तार्किक है। **आशा मोर** की कथाएं बहुत कुछ सोचने को विवश करती हैं। समाधान नहीं देना ही इनकी विशेषता है क्योंकि समाधान हर पाठक का अपने ही तरीके का होगा। अपनी बात में **रमेश जोशी** ने लिखा है कि वाल्ट व्हिटमैंन ने दास प्रथा पर अपने मान्यता बदली थी। मेरे विनम्र विचार में वाल्ट का समग्र चिन्तन समतापरक समाज और भारतीय अद्वैतदर्शन के बहुत निकट है जो आह्लादित करता है; उनके काव्य या कथन में अमेरिकी दास प्रथा पर पुनर्विचार खोजना दूर की कौड़ी लाने से कम नहीं।

परन्तु **रमेश जोशी** के आलेख 'मोटापा : एक बाजार निर्मित समस्या' में वर्तमान बाजारवाद का असली चेहरा बहुत तार्किक ढंग से दिखाया गया है। इसकी हानिकारक भूमिका को और इसके विरुद्ध भारतीय लाइफ स्टाइल की प्रासंगिकता को बहुत अच्छे से विश्लेषित भी किया गया है। रोचक तथ्य यह है कि विदेशों में कई संगठन अब बच्चों को जंक फूड की कमियां बता रहे हैं। इसी प्रकार **प्रभु जोशी** ने 'यौन उद्योग का विज्ञानवादी मुखौटा' में इस मुखौटे को उतारकर ही रख दिया है। वस्तुतः यौनशुचिता को 'कर्फ्यू' जैसा मानवाधिकार विरोधी मानने की हवा ही चल रही है या चलाई जा रही है। ये दोनों ही आलेख सिद्ध करते हैं कि हिन्दी में सामयिक लेखन और सामजिक सरोकार के प्रति चिन्तन उतना ही प्रखर है जितना कि अंगरेजी लेखन में माना जाता है परन्तु आश्चर्य इस बात का है कि रमेश जोशी और प्रभु जोशी जैसे लेखन को हिन्दी के समाचार-पत्र प्रकाशित ही नहीं करते। वे तो अंगरेजी में लिखे गए लेखों को ही प्रथम श्रेणी का लेखन मान कर उनका हिन्दी अनुवाद ही अधिक छापते हैं जो छद्म रूप में भारतीय जीवन मूल्यों को नीचा ही दिखाते हैं।

डॉ. अमरनाथ ने मन की बात में हिन्दी भाषी क्षेत्र के अतीत में ज्ञान विज्ञान व लक्ष्मी सम्पन्न होने की बात तर्कपूर्ण ढंग से रखी है जो समस्त हिन्दीभाषी क्षेत्र के मन की व्यथा-कथा ही बन गयी है। अब वे अपनी लेखनी इन बीमारू कहे जानेवाले चार राज्यों के वर्तमान पिछड़ेपन पर भी केन्द्रित करें। **मनोज श्रीवास्तव** 'व्याख्या' में अक्सर भारतीय चिन्तन परम्परा पर समान्तर पाश्चात्य लेखन के साथ लिखते हैं जिसे मैं निरंतर पढ़ता आ रहा हूं। इनमें क्षेपक की बड़ी पगडंडियों के साथ-साथ भारतीय विचार एवं दर्शन को व्यापक विश्व साहित्य के सन्दर्भ में रख कर रोचक व्याख्या रहती है। रामचरित का स्मरण करने का अवसर तो इस बहाने मिलता ही है जो आज के साहित्य में दुर्लभ होता जा रहा है। जनवरी अंक में उन्होंने तुलसी के साहित्यिक 'मैं' की विषद मीमांसा की है और सुंदरकाण्ड में तुलसी के 'सत्यमवदामि च भवानखिलान्तरात्मा' उद्घोष पर केन्द्रित किया है। उनका यह कथन है कि उक्त कथन करने में तुलसी ने विकारी आत्मा से अ-विकारी आत्मा तक का अन्तर तय किया है कुछ युक्तिसंगत नहीं लगता क्यों कि तुलसी इस कथन का आरम्भ इच्छारहित हो कर ही कर रहे हैं- 'नान्यास्पृहारघुपते हृदयेअस्मदीये... अर्थात हे रघुनाथ! (मैं सत्य कहता हूँ कि) मेरे हृदय में दूसरी कोई इच्छा नहीं है— मुझे तो बस आपकी पूर्ण भक्ति चाहिए और फिर आप तो जगत की अंतरात्मा होने से सब जानते ही हैं कि मैं सच ही कह रहा हूँ। स्पृहा-इच्छारहित हो कर ही तुलसी यह कह सके हैं इसलिए उक्त अंतर्यात्रा वह पहिले ही तय कर चुके हैं ऐसा भी मान सकते हैं। हाँ लेखक का यह कथन अत्यन्त सटीक है कि तुलसी यहाँ व्यक्तिगत साक्ष्य के साथ-साथ कास्मिक आर्डर या ब्रह्मांडीय चेतना की ओर ध्यान खींचना चाह रहे हैं।

कुंती मुख़र्जी की कविता बीत न जाए शिशिर ऋतु प्रेरित रम्य-रचना है। इधर कचनार के फूल शिशिरांत और वसन्त की संधि में फरवरी के लगभग ही खिलते हैं। इस अंक में आपने कवियों के आंग्ल कलेंडर के नववर्ष पर काव्य उन्मेष को स्थान दिया है। यह कलेंडर ग्रेगरी पोप-तेरह ने कैथोलिक धर्म के कलेंडर के रूप में १५६२ ई. में जारी किया था पर हमारे पुराने आका ब्रिटेन में इसे २०० साल तक नहीं स्वीकार किया गया। उस समय ब्रिटेन में वसन्त ऋतु (मार्च-अप्रैल) के साथ शुरू होने वाला कलेंडर चलता था। वही चलता रहा वहाँ पोप के वर्तमान कलेंडर का विरोध भी बहुत हुआ; सन १७५२ में इसे ब-मुश्किल ब्रिटेन में लागू किया जा सका। रूस ने १९१८ में अपनाया तो परन्तु वहाँ पुराने कलेंडर से ७-८ जनवरी को नववर्ष मानते हैं। पर हमारे यहाँ वसन्त ऋतु के साथ शुरू होने वाले चैत्र माह के परम्परागत नववर्ष को तो आजादी के दूसरे दिन ही सेक्यूलरवाद के कारण भुला दिया गया। आशा की जाती है कि कविगण गर्भनाल के माध्यम से ३१ मार्च २०१४ से आरम्भ होने वाले वैज्ञानिक एवं वसन्त उन्मुखी भारतीय नववर्ष विक्रम संवत्सर २०७१ पर इसी तरह अपना काव्य उन्मेष बिखेरेंगे।

ब्रजेन्द्र श्रीवास्तव, ग्वालियर

नववर्ष के आते ही गर्भनाल का जनवरी-२०१४ अंक मिला। नई सुबह की नई किरणों की तरह चमकते हुए इसके सभी पृष्ठ और उस पर जीवन के हर पहलू को उज्जवलित करती सामग्री।

देश-विदेश के लोगों का जिंदगी और समाज के प्रति नजरिया तथा उनके अपने विचार एक बार फिर पढ़ने को मिले। एक बार फिर मैं अपने देश और अपनी जन्मभूमि की भीनी-भीनी खुशबू को अपने आस-पास ही महसूस करने लगा। धन्य हैं वो लोग जो इस पत्रिका को बखूबी चला रहे हैं और वो लोग भी जो इसमें अपने लेख, संस्मरण, अनुभव, शेर-शायरी तथा कवितायें लिखते हैं। सचमुच यहाँ अमेरिका की भागमभाग वाली जिंदगी या बेरुखी से भरपूर और अपनेपन की परिभाषा तक से कोसों दूर रहने वाली जिंदगी में, अपनेपन का एहसास अपनी परम्पराओं की याद, अपने साहित्य, अपनी भाषा, अपने धर्मशास्त्रों से अवगत कराती हुई, एक मधुर पुरवैय्या के झोंके की तरह हर महीने दिल के दरवाजे पर आकर दस्तक दे जाती है और हम सबकुछ भूलकर कम से कम कुछ समय के लिए ही सही अपने देश की मिट्टी और अपने देशवासियों यानि भारतीय भाई-बहनों के साथ जुड़ जाते हैं और फिर शुरू हो जाता है सिलसिला एक-दूसरे के विचारों को आदान-प्रदान करने का। बल्कि मैं तो कहता हूँ कि हम जैसे लोग जो लेखन में रुचि रखते हैं उन्हें नये आयाम, नया उत्साह, नया जोश तथा नई प्रेरणा फिर से मिलती है कुछ और नया लिखने या करने की।

दिलोदिमाग़ में कुछ और उधेड़बुन शुरू हो जाती है। शब्दों, वाक्यों की टेढ़ी-मेढ़ी आकृत्तियां जन्म लेने लगती हैं और आखिरकार एक अच्छे लेख, संस्मरण, कविता या शायरी के रूप में हमारी भावनाएं उभरकर सामने आकर प्रकट जाती हैं। मैं हृदय की गहराईयों से गर्भनाल के सम्पादक महोदय तथा उनके सभी साथी जो इस पत्रिका को प्रकाशित करने में सहयोगी है उन सभी को धन्यवाद करता हूँ जो कि अपनी पत्रिका में हमें स्थान देकर हमें और हमारे विचारों को दूर रहते हुए भी एक-दूसरे से मिला देते हैं। नव वर्ष की शुभकामनाएँ

सुनील सनम, अमेरिका

इस मेल के लिए आपका हार्दिक आभार। वैसे हम आपकी ऑन-लाईन पत्रिका के विषय में पूर्व से जानते हैं। इसमें हमारी पुस्तक 'खिल उठे पलाश' की समीक्षा भी छपी थी। नव-वर्ष आपको एवं समस्त गर्भनाल परिवार को मंगलमय हो।

सारिका मुकेश, यूके

गर्भनाल का जनवरी-२०१४ अंक प्राप्त हुआ। बहुत धन्यवाद। पत्रिका के उत्तरोत्तर विकास के लिये मेरी शुभकामनाएँ।

इवा आरदी, हंगरी

गर्भनाल पत्रिका के माध्यम से आप हिंदी भाषा और साहित्य की समर्पित भाव से सेवा करते रहें यही अपेक्षा है। आपको नव वर्ष की हार्दिक शुभकामनाएँ।

अशोक लव, नई दिल्ली

नववर्ष की अनंत आत्मीय मंगल कामनाएं। गर्भनाल का ख़ास इंतज़ार रहने लगा है अब। नया अंक काफी कुछ पढ़ लिया है। 'परख' में प्रभु जोशी जी के विश्लेषण ने बहुत प्रभावित किया! वाकई इस विषय पर गम्भीरता से कुछ करने की ज़रूरत है। अन्यथा यौनिक स्वच्छंदता भारत की सांस्कृतिक सत्ता को पदच्युत कर देगी। सम्भवतः पंचतंत्र की कहानी अधूरी छूट गयी है इस अंक में। कुछ कवितायें भी अच्छी लगीं।

अशोक अंजुम, अलीगढ़

गर्भनाल का ८६वां अंक पढ़ा। अच्छे मोती चुने गये हैं। धन्यवाद।

गुंजन झाझारिया 'गूंज'

गर्भनाल मिलते ही पूरा अंक पढ़ गया। गंगानंद झा जी ने जिस तरह नेल्सन मंडेला को याद किया है, वह सराहनीय है। डॉ. अमरनाथ शर्मा की हिंदी की जातीय विरासत अत्यंत उत्कृष्ट एवं सूचनाप्रद रचना है। मनोहर श्याम जोशी के हिंदी साहित्य में वीर बालकवाद को पुनः प्रकाशित करके आपने अच्छी बहस चला दी है। प्रभु जोशी का यौन उद्योग का विज्ञानवादी मुखौटा बहुत ही सनसनीखेज और साहसिक रचना है, उन्हें बधाई। इतनी स्तरीय रचनाएँ और इनके बाद आखिरी बात का झटका, बहुत अच्छा अंक बन पड़ा है।

सुधीर साहू

गर्भनाल का अंक मिला। हमेशा की तरह रोचक व उत्तम रचनायें पढ़ने को मिलीं। नये साल की शुभकामनायें।

हरमिन्दर सिंह चाहल

गर्भनाल पत्रिका नियमित प्राप्त होती रहती है। हमें आपका यह प्रयास अच्छा लगता है। नव वर्ष की ढेरों शुभकामनाएँ।

कुमकुम जैन

Thanks for such a nice Magazine. Wish you & Your Family HAPPY NEW YEAR 2014. Regards.

Arun Pandey

औघड़ उवाच : आहार निद्रा भय मैथुनं च, सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम। यानि मनुष्य और जानवरों में भोजन-भय-निद्रा और मैथुन की ज़रूरत एक-सी रहती है। यूं देखा जाये तो पशु और मनुष्य इस स्तर पर एक-से हैं।

चेला : गुरुवर, शरीर की बाकी ज़रूरतों की पूर्ति तो समझ आती है, पर देखिये कि आधुनिक दौर में भय का भाव बाकियों पर भारी पड़ रहा है। यूं समझें गुरुवर कि भय शरीर के रोंये-रोंये में चौबीसों घंटे प्रवाहित बना रहता है। रीढ़ के भीतर तक व्याप गयी थरथराहट जाने का नाम ही नहीं लेती।

औघड़ : बच्चा भय जीवन में निरंतरता का आधार है। भय की प्रबलता ही गति का कारण है, अन्यथा भय न हो तो संसार की गति ठहर जाये। तुलसी बाबा तो पहले लिख ही गये हैं- 'भय बिनु होई न प्रीत'?

चेला : हम जैसे मूरख ऊँची बातें नहीं समझते महाराज। इसे भय कहो कि डर, सुबह से देर रात तक यह हमारा पीछा ही नहीं छोड़ता। घर में बीवी का डर, दफ्तर में बॉस का डर, सड़क पर ट्रैफिक में फँसने का डर, खाद्य सामग्री में मिलावट का डर, सामान के नकली होने का डर, चार लोगों में कमतर हैसियत का डर, बीमारी में नकली दवाइयों का डर और न जाने कितने तरह के डरों से भरा है यह जीवन। माथा फटने लगता है लेकिन डर से उबरने का रास्ता नहीं दिखता। इससे अच्छे तो आप हैं गुरुदेव। दुनियादारी की झंझटों से मुक्ति। क्षमा चाहता हूं महाराज यह कहते हुए कि आपके मजे हैं। आगे नाथ न पीछे पगहा... एक दिन के लिये हमारी दशा का अनुभव लीजिये। आपका ज्ञान काँपने लगेगा।

साभार : संजयझाला.कॉम

औघड़ : बच्चा, हम समझते हैं तुम्हारी दुविधा। मोह सकल व्याधिन कर मूला... ऐसे ही नहीं कहा गया है। यही तो जीवन का मर्म है जिसे ज्ञानी व्दैतवाद कहते हैं। दुनियादारी के सरोवर में आप उतरते जाते हैं और कहते जाते हैं कि सरोवर आपको डुबो रहा है।

चेला : क्या करें गुरूजी, डर से उबरने का उपाय क्या है?

औघड़ : निर्भय बनो वत्स।

चेला : लेकिन इसकी कीमत चुकानी पड़ती है गुरूजी। और कीमत कोई चुकाना नहीं चाहता। लोग कानी उँगली का नाखून मुंह से कुतरकर शहीदों में नाम लिखवाना चाहते हैं। आज के जमाने में बड़ी मुश्किल से तो जुगाड़ जमती है। तीन तरह की चालें चलकर, तेरह तरह की चापलूसी करनी पड़ती है, तब कहीं जाकर पद-पोजीशन और सत्ता का ठौर नसीब होता है और आप कहते हैं कि निर्भय बनो। मतलब न डरें बॉस से, न करें उनकी मुखदेखी बातें। न मिलायें उनकी हाँ में हाँ। खुल्ला छोड़ दें नालायकों, चुगलखोरों और चमचों को खुद के खिलाफ बॉस के कान भरने के लिये। वे लालबुझक्कड़ी सूझ-बूझ का प्रदर्शन करें, दाँत निपोरकर भितरघात की नित नयी तरकीबें आजमायें और हम निर्भय बने रहकर मिसमिसायें और खून के घूंट गुटकें। यह न होगा महाराज हमसे। आधुनिक युग के चंट कहते हैं गुरुवर कि नालायकों, चुगलखोरों, चमचों से बचाव का एक ही तरीका बचा है और वह है उनके बरतावों का अनुसरण। यानी 'जीके राज में राने, सौ बाके मन की माने, ऊंट बिलइया लै गई, सौ हाँजू हाँजू कानै'। मतलब समझे महाराज। मुखदेखी बातें और हाँजू, हाँजू ही बॉस के कोप से बचा सकते हैं। और बात-बात में सहयोगियों को मूरख, नाकारा, कमअक्ल बताते रहने से ही नम्बर बढ़ते हैं। अगर दूसरे की लाइन काटे बगैर अपनी लाइन बढ़ाने की कोशिश की तो समझिये दफ्तर में सुलग रही दोजख की आग में झोंक दिये जाओगे। जमाना अपनी योग्यता नहीं, दूसरे की कमतरी बखान करने का है। एक ओर दूसरों को गरियाओ और दूसरे ही क्षण बॉस के गुण गाओ, बस हो गयी नौकरी। इस फार्मूले को हर जगह फिट करते जाईये और हो जाईये निर्भय। आखिर गब्बर के ताप से भला गब्बर के अलावा और कौन बचा सकता है? ■

atmaram.sharma@gmail.com